प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

जून 2021

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयों सादर नमस्कार। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि जब आप यह अंक पढ रहे होंगे तब वर्षा शुरू हो चुकी होगी। कहीं मानसूनी वर्षा हो रही होगी तो कहीं नम हवाएं चल रही होंगी तथा सूर्य देवता का आवेग भी कम हो चुका होगा किसान भाई नई आशा के साथ जिंदगी के नये सफर की तैयारी में भी जुट गये होंगे।

किसान भाईयो इस समय हम लोग एक कोविड –19 के प्राकृतिक महामारी की द्वितीय लहर से जुझ रहे हैं। जिससे हम लोग बहुत जल्दी उबर पायेंगे ऐसी आशा करते हैं क्योंकि सुख या दुख के दिन हमेशा नहीं रहते हैं यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है यही शास्वत सत्य है। इसके साथ ही हमें तीन बातों का ध्यान रखना है। प्रथम बात यह है कि सामाजिक दूरी का पालन करें, दूसरी हाथों को बराबर साबुन से धोते रहें तथा तीसरी बात यह है कि नाक एवं मुंह को मास्क या गमछे से सही प्रकार से ढककर रखें और समय आने पर टीका अवश्य लगवायें हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि उपर्युक्त बातों का पालन करने से कोविड –19 नामक प्राकृतिक महामारी से निजात अवश्य मिलेगी और इसके बाद हम फिर खुश हाल जिंदगी जी सकेंगे। कहा जाता है कि

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणी पश्यंतु, मा कश्चित दुःखभाग भवेत।।

खेती के लिये पानी, खाद, बीज एवं अच्छी तकनीक मिल जाये तो किसान कुछ भी कर सकता है। खेती में या जीवन में पानी का विशेष महत्व है। इसके सदुपयोग पर ध्यान देना होगा। सरकार द्वारा "पर ड्रोप मोर क्राप" का नारा दिया गया है। बरसात के पानी को तालाबों (जोहडों) में एकत्रित कर लेना चाहिये। कहा जा रहा है कि खेत का पानी खेत में तथा घर का पानी घर में तथा अन्य को तालाबों में रोकने से हमारे भूगर्भ जल स्तर में वृद्धी होगी, जिससे भविष्य में आने वाली चुनौतियों का सामना कर सकते हैं।

वर्तमान सरकार के सात वर्ष पूरे करने की खुशी में अपनी उपलब्धियों का विश्लेषण कर रही है। अपनी कल्याणकारी योजनाओं एवं कानूनों का बडे पैमाने पर प्रचार प्रसार कर रही है इनमें अधिकांश योजनाएं किसानों, गरीबों तथा महिलाओं पर केंद्रित हैं। नए कानूनों से किसानों की भविष्य की विकसित रूपरेखा तय की जा रही है। हमें परिवर्तनों की गति तेज करनी पडेगी। सरकार द्वारा बनायी गयी योजनाओं एवम कानूनों का लाभ उठाने के लिये आगे बढ–चढ कर हिस्सा लेना पडेगा।

जैसा की हमारा अंक समसामयिक कृषि आलेखों पर आधारित है। इस अंक मे खरीफ मौसम में लगने वाली फसलों पर विभिन्न लेख सम्मिलित है। जैसे धान की नर्सरी (पौध) उगाने की तकनीक, फसल विविधिकरण एवं उच्च उत्पादकता के लिए अरंड की खेती अपनाएं, कपास की उन्नत खेती हेतु समेंकित कीट प्रबंधन, बाजरे की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियां, टिकाऊ फसल उत्पादन का आधार मृदा स्वास्थ्य कार्ड, गन्ने के उत्पाद एवं मूल्यसंवर्धन, नये बागों की स्थापना की तकनिकी, खरीफ के मौसम में उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जियों के उत्पादन

की उन्नत प्रौद्योगिकियां, जैविक एजेंट तथा जैविक कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा कृषि रक्षा प्रबंधन, मैदानी क्षेत्रों में सफल वर्षा पोषित कृषि के लिए जल संग्रहण प्रविधियां, गुलाब का प्रवर्धन, कृषि की आधुनिक तकनीकियां बनी किसानों के लिए वरदान, विषयों पर आलेख हैं। यह अंक आपको कैसा लगा, हमें अवश्य सूचित करें।

संपादक

जून 2021

प्रसार दूत

वर्ष 26 | 2021 | अंक-2

संरक्षक

डॉ. अशोक कुमार सिंह

निदेशक

डॉ. बी.एस. तोमर

कार्यवाहक संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक

डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल

डॉ. राजीव कुमार सिंह

डॉ. गोगराज सिंह जाट

श्री के. एस. यादव

डॉ. हरीश कुमार

डॉ. वाई. पी. सिंह

श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग

श्री विजय सिंह जाटव

श्री लक्खी राम मीणा

श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110012

फोनः 011–25841039

पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)

ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in

वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. धान की नर्सरी (पौध) उगाने की तकनीक 1
2. फसल विविधिकरण एवं उच्च उत्पादकता के लिए अरंड की खेती अपनाएं 5
3. कपास की उन्नत खेती हेतु समेकित कीट प्रबंधन 9
4. बाजरे की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियां 14
5. टिकाऊ फसल उत्पादन का आधार मृदा स्वास्थ्य कार्ड 19
6. गन्ने के उत्पाद एवं मूल्यसंवर्धन 22
7. नये बागों की स्थापना की तकनिकी 25
8. खरीफ के मौसम में उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जियों के उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकियां 29
9. जैविक एजेंट तथा जैविक कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा कृषि रक्षा प्रबंधन 34
10. मैदानी क्षेत्रों में सफल वर्षा पोषित कृषि के लिए जल संग्रहण प्रविधियां 38
11. गुलाब का प्रवर्धन 45
12. कृषि की आधुनिक तकनीकियां बनी किसानों के लिए वरदान 49

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा

एक प्रति मूल्य ₹ 20/–

धान की नर्सरी (पौध) उगाने की तकनीक

दिनेश कुमार एवं यशबीर सिंह शिवे
सस्य विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली110012

धान हमारे देश की सबसे महत्वपूर्ण व विश्व की दूसरी महत्वपूर्ण खाद्यान फसल है। भारत देश में लगभग 44 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर धान की खेती की जा रही है। हालांकि देश में धान की उत्पादकता धान उगाने वाले प्रमुख एशियाई देशों एवं यहां तक की विश्व की औसत वार्षिक उत्पादकता से भी कम है। भारतवर्ष में धान की कम उत्पादकता के अनेक कारण हैं। धान की खेती का एक बहुत बड़ा हिस्सा अभी भी वर्षा पर आधारित है जहां पर पानी की कमी के कारण धान की कम पैदावार प्राप्त होती है। केवल 60 प्रतिशत ही धान–क्षेत्र सिंचित है। इसके अलावा सूखा, पुष्पावस्था पर अधिक तापक्रम, फसल का गिरना, मृदा क्षारीयता, लवणता अथवा अम्लता, घटती मृदा उर्वरता, जस्ते की कमी, लौह तत्व की विषाक्तता, खरपतवार, असंतुलित उर्वरक प्रयोग तथा कीट एवं रोग द्वारा क्षति, आदि अनेक कारण हैं।

धान उत्पादन को लाभकारी बनाने के लिए नई–नई तकनीकियों को अपनाने की आवश्यकता है जिससे की फसलोंत्पादन लागत में कमी लाई जा सके और उत्पादकता बढ़ाई जा सके। इस दिशा में धान की रोपाई में प्रयुक्त पौध का स्वस्थ होना आवश्यक है। यदि धान की पौध रोग अथवा कीट ग्रसित अथवा कमजोर होगी तो उसमें ब्यांत कम होगा जिसके कारण फसल की उत्पादकता भी कम होगी। अतः प्रस्तुत लेख में धान को परंपरागत रोपाई और श्री विधि से उगाने के लिए नर्सरी की तैयारी एवं प्रबंधन पर चर्चा की जा रही है।

बीज गुणवत्ता एवं उन्नत किस्में

धान उत्पादन में उन्नत प्रजातियों के बीज का योगदान काफी महत्वपूर्ण होता है। अच्छे बीज के अभाव में फसलोंत्पादन के अन्य साधनों का उपयोग विफल हो जाता है। सर्वप्रथम, ऐसी प्रजातियों के बीज का उपयोग किया जाए जो किसी क्षेत्र–विशेष एवं मृदा–दशा के लिए उपयुक्त हों। संकर किस्मों का बीज प्रति वर्ष बदलने की आवश्यकता होती है। अतः संकर बीज नया तैयार किया हुआ ही प्रयोग में लाना चाहिए। किसी किस्म के सही नाम तथा गुणों की जानकारी के लिए आवश्यक है कि बीज किसी विश्वसनीय विक्रेता, सरकारी संस्थान, कृषि विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय अथवा प्रादेशिक बीज निगमों से प्रमाणित बीज ही खरीदा जाए। बेहतर यही होगा कि बुवाई से पूर्व बीज की अंकुरण क्षमता की जांच कर ली जाए। बुवाई से पूर्व बीज का उपचार परम आवश्यक होता है। आमतौर पर प्रमाणित बीज को उपचारित करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह पहले से ही उपचारित होता है। परंतु यदि पिछली फसल का बीज उपयोग में लाया जा रहा है तो उसका उपचार अति आवश्यक होता है।

बीज उपचार एवं मात्रा

अगर किसान भाई अपने बीज का प्रयोग कर रहे हैं तो इस बात विशेष ध्यान रखें कि बीज में अंकुरण का प्रतिशत 80–90 का होना चाहिए। बुवाई से पहले स्वस्थ बीजों की छंटनी कर लेनी चाहिए। इसके लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग करते हैं। नमक का घोल बनाने के लिए 2.0 कि.ग्रा. सामान्य नमक 20 लीटर पानी में घोल लें और इस घोल में 3.0 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छी तरह हिलाएं, इससे स्वस्थ एवं भारी बीज नीचे बैठ जाऐंगे और थोथे एवं हल्के बीज ऊपर तैरने लगेंगे। इस तरह साफ व स्वस्थ छांटा हुआ 20 कि.ग्रा. बीज महीन दाने वाली तथा 25 कि. ग्रा. बीज मोटे दानें वाली किस्में में एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए बीज पर्याप्त होता है।

कवक एवं जीवाणुनाशी दवाओं के घोल से बीज का उपचार करने से बीज के द्वारा फैलने वाली कवक एवं जीवाणु– जनित बीमारियों का नियंत्रण हो जाता है। इसके

लिए 10 ग्रा. बाविस्टीन और 1 ग्रा. स्ट्रेप्टोसाईक्लीन 10 लीटर पानी में घोल लें। अब 20 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लीटर उपरोक्त घोल में 24 घंटे के लिए पानी में भिगों कर रखें। इस उपचार से जड़गलन (फूटराट) झोंका (ब्लास्ट) एवं पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) आदि बीमारियों के नियंत्रण में सहायता मिलती है। इसके बाद बीज को किसी छायादार स्थान में टाट के बोरों अथवा साफ कपड़े पर रख दें। इस बीज को तुरंत टाट के बोरे अथवा साफ कपड़े से अच्छी प्रकार ढक दें। 2–3 घंटे के अंतराल में इस बीज के ऊपर पानी छिड़कते रहें जिससे की बीज गीला बना रहे। आप पाएंगे की अगले 24–36 घंटे बाद यह बीज अंकुरित हो जाता है जिसका प्रयोग आप नर्सरी की बुवाई में करते हैं।

धान की नर्सरी की तैयारी

धान की नर्सरी या पौध उगाने की अनेक विधियां प्रचलित हैं, जैसे सूखी क्यारी विधि, डैपोग विधि, चटाई विधि, सुधरी चटाई विधि और गीली क्यारी विधि, आदि। परंपरागत विधि से धान की रोपाई करने के लिए मोटे तौर पर किसानों द्वारा गीली क्यारी विधि को अधिक अपनाया जाता है। इसी प्रकार यदि धान को श्री विधि से उगाया जाता है तो उसकी नर्सरी उगाने की विधि थोड़ी भिन्न है। अतः अब धान पौध उगाने की गीली क्यारी विधि एवं श्री विधि से धान उगाने के लिए नर्सरी तैयार करने की विधि पर जानकारी दी जा रही है।

(क) गीली क्यारी विधि

पौध शाला का क्षेत्रफलः नर्सरी ऐसी भूमि में तैयार करनी चाहिए जो उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली व जल स्रोत के पास हो। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में धान की रोपाई के लिए 800 –1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में पौध तैयार करना पर्याप्त होता है।

नर्सरी की बुवाई का समयः धान की नर्सरी की बुवाई का सही समय वैसे तो विभिन्न किस्मों पर निर्भर करता है। लेकिन 25 मई से लेकर 20 जून तक का समय बुवाई के लिए उपयुक्त पाया गया है।

नर्सरी बोने की विधिः धान की नर्सरी गीली अथवा भीगी क्यारी विधि से पौध तैयार करने का तरीका उत्तर भारत में अधिक प्रचलित है। इसके लिए खेत में पानी भरकर 2–3 बार जुताई करते हैं ताकि मिट्टी लेहयुक्त हो जाए तथा खरपतवार नष्ट हो जाएं। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। जब मिट्टी की सतह पर पानी न रहे तो खेत को 1.25 से 1.50 मीटर चौड़ी तथा सुविधा जनक लंबी क्यारियों में बांट लें ताकि बुवाई, निराई–गुडाई एवं सिंचाई की विभिन्न सस्य क्रियाएं सुविधापूर्वक की जा सकें। क्यारियां बनाने के बाद पौधशाला में 5 सें.मी. ऊंचाई तक पानी भर दें और अंकुरित बीजों को समान रूप से क्यारियों में बिखेर दें। अगले दिन सुबह खड़ा पानी निकाल दें और एक दिन बाद ताजे पानी से सिंचाई करें। यह प्रक्रिया 6–7 दिनों तक दोहराएं। इसके बाद खेत में लगातार पानी रखें, परन्तु इस बात का ध्यान रखें कि किसी भी अवस्था में पौध पानी में डूबे नहीं।

खाद एवं उर्वरकों की मात्रा एवं प्रयोगः पौधशाला के 800 वर्गमीटर क्षेत्रफल में लगभग 600–800 कि. ग्रा. गोबर की गली–सड़ी खाद, 8–12 कि.ग्रा. यूरिया, 15–20 कि. ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट, 5–6 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश एवं 2–2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह से मिलाना चाहिए।

(ख) धान सघनता पद्धति (धान गहनता पद्धति) के लिए पौध (नर्सरी) तैयार करना

धान सघनता पद्धति धान उगाने की एक ऐसी विधि है जिसमें कम उम्र की पौध को एक स्थान पर एक ही पौध लगाकर, जैविक खादों के प्रयोग से, कम जल एवं हाथ द्वारा विशेष निराई–यन्त्र का प्रयोग कर अधिक उपज ली जाती है। धान सघनता पद्धति निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित होती है।

- इसमें 8–12 दिन (2–3 पत्तियों वाली) की पौध, जिसमें कल्ले निकलने की अपार क्षमता और जड़ों के फैलाव की अपार योग्यता होती है, की रोपाई की जाती है।
- सावधानीपूर्वक एक स्थान पर एक ही पौध की रोपाई।
- सामान्य से अधिक दूरी और वर्गाकार 25 से. मी. x 25 से. मी. पर पौध की रोपाई करें।

- फसल में खरपतवार नियंत्रण तथा हवा के आदान प्रदान के लिए कोनोवीडर/रोटरी हो पावर वीडर का प्रयोग।
- खेत में लगातार जल प्रवाह के स्थान पर क्रम से नम तथा शुष्क सिंचाई विधि अपनाना परंतु जननिक वृद्धि आरंभ होने पर फसल में 1–2 से. मी. पानी खड़ा रखना आवश्यक है।
- जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट आदि के प्रयोग पर विशेष बल दें।

धान सघनता पद्धति कोई नई विधि या तकनीक नहीं है। इस विधि से फसल की शस्य क्रियायों में थोडा सा बदलाव कर कम उत्पादन लागत से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इसमें धान के पौधें की वृद्धि एवं विकास के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जिससे जल तथा भूमि संसाधनों का एवं पौधें की आनुवंशिक क्षमता का सम्पूर्ण उपयोग हो सके। यह निम्नलिखित विधियों को अपनाकर संभव हैः

नर्सरी के स्थान का चुनाव

धान सघनता पद्धति में नर्सरी तैयार करने में विशेष ध्यान रखना होता है, क्योंकि इसमें कम उम्र यानी 8–12 दिन की पौध को रोपाई के लिए प्रयोग किया जाता है। जहां तक संभव हो प्रभावी रोपाई के लिए नर्सरी खेत के एक कोने या मध्य में तैयार करें।

नर्सरी क्षेत्र का आकार

एक हेक्टेयर खेत में पौध रोपाई के लिए 100 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र की आवश्यकता होती है। परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 20 वर्गमीटर की 5 क्यारियों में डेढ़–डेढ़ किलोग्रा. बीज बो देते हैं (1000 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र में 7–8 किलोग्रा. बीज की आवश्यकता होती है)। आमतौर पर 1.25 मी. चौड़ी क्यारी उपयुक्त होती है। क्यारी की लंबाई किसान अपनी सुविधानुसार सुनिश्चित कर सकते हैं। सुविधा को देखते हुए एक ही क्यारी या छोटी–छोटी (8 मी. x 1.25 मी. की 10 क्यारियां) कई क्यारियां तैयार की जा सकती हैं। चूंकि 8–10 दिन की पौध की जड़ें लगभग 7–8 से.मी. गहराई तक पहुंच जाती हैं। इसीलिए मृदा से 12.5–15 से.मी. ऊंची उभरी क्यारियां तैयार की जाती हैं। क्यारियों के चारों ओर सिंचाई तथा जल निकास के लिए 20–30 से.मी. चौड़ी नालियां बनाई जाती हैं। भूमि क्षरण रोकने के लिए क्यारियों की सतह को लकड़ी के पाटे की मदद से दृढ करें या धान की पुआल का प्रयोग करें।

नर्सरी तैयार करना

नर्सरी क्षेत्र में सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग कर क्रमशः चार सतहों में तैयार की जाती है। पहली ऊपरी 2.5 से.मी. सतह पर अच्छी सडी–गली गोबर की खाद, दूसरी 3.75 से.मी. सतह में मिटटी, तीसरी 2.5 से.मी. सतह फिर अच्छी सड़ी–गली गोबर की खाद, तथा चौथी 6 से.मी. सतह पर मिटटी का प्रयोग करते हैं। इन सभी सतहों को आपस में अच्छी तरह मिला होना चाहिए ताकि जड़ें आसानी से प्रवेश कर सकें। इसके अतिरिक्त क्यारियों पर 3–5 से.मी. मोटी कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट की सतह फैलाकर भी नर्सरी तैयार की जा सकती है।

बीज दर

एक हेक्टेयर क्षेत्र की रोपाई के लिए 100 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र में पौध तैयार करने के लिए 7–8 किलोग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बीज को क्यारियों पर समान रूप से छिड़क दिया जाता है। इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि बीज आपस में एक दूसरे के ऊपर न पड़ें।

बीज उपचार

स्वस्थ एवं शुद्ध बीज का उपयोग करें। बीज उपचार गीली क्यारी विधि की भांति ही करें, जिसका वर्णन विस्तार से गीली क्यारी विधि के अंतर्गत किया गया है।

पलवार का प्रयोग

सूर्य की किरणों के सीधे प्रभाव और चिड़ियों से बचाव के लिए क्यारियों को धान के पुआल से ढक दें। आवश्यकतानुसार दिन में दो बार फव्वारे से पानी दें। बीज जमने के साथ ही क्यारियों से पुआल को हटा दें।

धान की नर्सरी का प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण

पौधशाला में 10–12 दिन बाद निराई अवश्य करें। यदि पौधशाला में अधिक खरपतवार होने की संभावना हो तो

ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी या बैन्थियोकार्ब नामक शाकनाशियों की 120 मि.ली. मात्रा 60 लीटर पानी में घोलकर 800 वर्गमीटर क्षेत्रफल में बुवाई के 4–5 दिन बाद खरपतवार उगने से पहले छिड़क दें। इससे खरपतवार काफी हद तक कम हो जाएंगे। पौध शाला में हमेशा पानी भरा रहने देने से भी खरपतवारों को रोका जा सकता है।

कीट नियंत्रण

पौधशाला में कीटों का प्रकोप होते ही रोगर 2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कना चाहिए। 800 वर्गमीटर क्षेत्रफल के लिए 60–65 लीटर घोल पर्याप्त होता है। लेकिन ध्यान रहे, छिड़काव हमेशा साफ मौसम में ही करना चाहिए।

लौह तत्व की कमी के लक्षण एवं प्रबंधन

धान की नर्सरी में कभी–कभी लौह (आयरन) तत्व की कमी पाई जाती है खासकर ऊपरी भूमियों में जिनमें पानी लंबे समय तक रुक नहीं पाता है। लौह तत्व की कमी से पहले ऊपरी पत्तियां पीली हो जाती हैं। यदि यह कमी बनी रहती है तो सारी पत्तियां पीली होकर फिर सफेद रंग की हो जाती हैं। इसके बाद नर्सरी में पौध भूरे रंग की होकर सूख जाती है। इसके उपचार के लिए सबसे पहले नर्सरी में हल्का पानी खड़ा रखें और आयरन सल्फेट का छिड़काव करें। आयरन सल्फेट (0.5%) तथा चूने (0.25%) के घोल को बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर छिड़क दें। नर्सरी के 800 – 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए 60–65 लीटर मिश्रित घोल पर्याप्त होगा।

यदि आवश्यकतानुसार उपरोक्त विधियों से धान की पौध उगाई जाती है तो निश्चित तौर पर धान की पौध स्वस्थ होगी जो मुख्य खेत में रोपाई के लिए अधिक उपयुक्त होगी। साथ ही यह स्वस्थ पौध धान की उत्पादकता वृद्धि में सहायक होगी।

फसल विविधिकरण एवं उच्च उत्पादकता के लिए अरंड की खेती अपनाएं

जे एस यादव, बलबीर सिंह एवं नरेंद्र कुमार
कृषि विज्ञान केंद्र, बावल
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविध्यालय, हिसार

अरंड भारत की एक महत्वपूर्ण एवं व्यावसायिक अखाद्य तिलहन फसल है। भारत का अरंड के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान है तथा अरंड तेल के विश्व बाजार में लगभग 80 से 90% हिस्से पर भारत का कब्जा है।

गुजरात, राजस्थान एवं आन्ध्र प्रदेश अरंड की खेती के लिए मुख्य राज्य है आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि राज्यों में उत्पादकता बहुत ही कम है। कम उपजाऊ भूमि, बारानी खेती एवं फसल उत्पादन के आदनों का कम उपयोग के कारण अरंड की पैदावार कम आती है।

हरियाणा में अरंड की खेती कम सिंचित एवं पूर्ण सिंचित, मरगोझा एवं सरसों में तना गलन प्रभावित क्षेत्रो में सफलता पूर्वक ली जा सकती है। राजस्थान की सीमा से जुड़े जिलों सिरसा, भिवानी, हिसार, फतेहाबाद, महेन्द्रगढ़, रेवाड़ी एवं जींद, झज्जर, व गुड़गाँव के कुछ हिस्से में अरंड की सफलत्ता की प्रबल संभावनाएं है।

इसके तेल का हवाई जहाज के इंजन का तेल, मशीनों में चिकनाई, नायलान, प्लास्टिक, चमड़ा, विभिन्न रंगो की डाई, सौंदर्य प्रसाधन, साबुन, औषधियों एवं अनेकों अन्य उत्पादों में उपयोग होने के कारण औधोगिक महत्व है।

"अधिक आमदनी एवं कम जोखिम के लिए खरीफ एवं रबी की विभिन्न फसलों के साथ अंत फसल प्रणाली में अरंड की बुवाई करे। इससे अन्तः फसलों की पैदावार भी बढ़ती है। इस की खेती उपरान्त भूमि में हवा एवं पानी का प्रवाह एवं उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। अरंड की अधिक पैदावार के लिए किसान निम्नलिखित उन्नत तकनीक अपनाएं।"

उन्नतशील किस्में

बारानी एवं कम सिंचित क्षेत्रों में डी.सी.एच–177 (संकर) का प्रयोग करें। सिंचित एवं उच्च आदान प्रबंधन वाले क्षेत्रों में भी डी.सी.एच–177, आई.सी.एच.–66 की बुवाई करें, यह हाइब्रिड कम पानी एवं ठंड वाले इलाकों में भी अच्छी पैदावर देता है। सी.जी.एच.–7, सी.जी.एच.–8, डी. सी.एच–519 की बुवाई सिंचित इलाके में कर सकते हैं। डी.सी.एच–177 में सफेद मक्खी का प्रकोप बहुत ही कम होता है। दक्षिण राजस्थान व गुजरात में सी.जी.एच.–7, सी.जी.एच.–8, सी.जी.एच.–9 की बुवाई करे। दक्षिण भारत के राज्यों में राज्यवार सिफारिश का पालन करें।

बुवाई का समय

उत्तरी भारत (हरियाणा, पंजाब, यूपी व उत्तरी राजस्थान) में संकर (हाइब्रिड) किस्मों की बुवाई का सर्वोतम समय जून अंत से मध्य जुलाई है। जुलाई अंत तक बुवाई अवश्य पूरी कर लें। जल्दी बुवाई से खरपतवारों एवं कीटों का ज्यादा प्रकोप होता है और अगस्त में बुवाई करने से सर्दी का प्रकोप अधिक होने से उत्पादन कम हो जाता है। राजस्थान में जुलाई अंत एवं गुजरात में अगस्त में बुवाई की सिफारिश है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई की विधि

बारानी एवं कम सिंचित दशा में बुवाई कतारों में 90 सें. मी. (3 फुट) एवं पौधों में 60 सें. मी. (2 फुट) की दूरी पर करें तथा बुवाई के लिए 3 से 4 कि. ग्रा. बीज प्रति एकड़ का उपयोग करें और पौधों कि उचित संख्या सुनिश्चित करें। सिंचित क्षेत्रों में कतारों का फासला 120 से 150 सें. मी. एवं पौधों में 90 से. मी. रखे तथा 1 कि. ग्रा. से 1 कि. 600 ग्रा. तक बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बीज की गहराई 2 से 3 इंच रखें।

अंतवर्ती फसलों के लिए अरंड की कतारों का फासला आवश्यकतानुसार बढ़ा कर 5 से 8 फिट तक कर सकते

हैं। बुवाई से पहले बीज का 12 से 24 घंटे पानी में भिगोना लाभप्रद है।

बीज उपचार

बीज व मृदा जनित रोगों से बचाव के लिए थिरम या केप्टान 3 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज या बाविस्टीन या कार्बेन्डाजिम 2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करना लाभदायक है।

खाद एवं उर्वरक

अरंड की अच्छी पैदावार के लिए खादों की सही मात्रा का उप्युक्त अवस्था पर प्रयोग करना अति आवश्यक है वर्षा आधारित अरंड में 8 किलोग्रा. नत्रजन व 16 कि. ग्रा। फॉस्फोरस प्रति एकड़ बुवाई से पहले डालें। नत्रजन कि दो अतिरिक्त मात्र (8–8 कि० ग्रा०) बुवाई के 35–40 व 65–70 दिन बाद वर्षा के अनुसार दें। सिंचित फसल में 8 कि. ग्रा. नत्रजन व 16 कि. ग्रा. फॉस्फोरस प्रति एकड़ बुवाई के समय एवं नत्रजन 8 कि. ग्रा. के हिसाब से बुवाई के 35–40 व 75–80 दिन बाद दें। अधिक पैदावारके लिए पके गुच्छों की कटाई के बाद सिंचाई के साथ 8 कि. ग्रा. नत्रजन दें। 10 से 12 कि. ग्रा. पोटाश, 10 कि. ग्रा. जिंक सल्फेट एवं 100 कि. ग्रा. जिप्सम भी बुवाई के समय देना उचित रहेगा।

सिंचाई

प्रारंभिक अवस्था में अरंड को ज्यादा पानी कि जरूरत नहीं होती परंतु लंबी अवधि (20–25 दिन) तक शुष्क दशा में अधिकतम वृद्धि के समय सिंचाई की आवश्यकता होती है सिंचाई देने से अरंड कि पैदावार में आशातीत बढ़ोतरी होती है पानी की उपलब्धता एवं भूमि की जल धारण क्षमता के अनुरूप 3–4 सिंचाइयो से लेकर 5–6 सिंचाइयाँ देनी पड़ती है। बुवाई से 50–60 दिन एवं 80–95 दिन बाद अगर नमी की कमी हो तो सिंचाई अवश्य करे। बाद में पानी सिंचाई कि उपलब्धता के अनुसार गुच्छो कि कटाई के बाद गर्मी में 15–20 व सर्दी में 25–30 दिन के अंतराल पर करते रहे।

निराई गुड़ाई

अरंड खरपतवार के प्रति बहुत सहनशील है आरंभ में खरपतवार अरंड के पौधों की अपेक्षा ज्यादा बढ़ते है। बुवाई के चोथे व सातवें सप्ताह में दो निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है कपास की तरह इस फसल में ट्रैक्टर, बैल या ऊँट से भी निराई–गुड़ाई की जा सकती है। बुवाई से पहले 800 मि. ली. बैसालीन को 250 लिटर पानी के साथ छिड़काव करके भूमि में मिलाने से खरपतवार की रोकथाम की जा सकती है बुवाई के बाद फसल उगने से पहले 800 मि. ली. पैंडामेथालीन का छिड़काव करे।

अरंड के मुख्य कीट व रोकथाम

अरंड के उत्पादन को प्रभावित करने में कीट बहुत बड़े कारक है। इस फसल पर कीटों का आक्रमण पौधों की विभिन्न अवस्था पर होता है कीटों से अरंड में 5–14 प्रतिशत की हानि होती है। अरंड पर कई कीटों का आक्रमण होता है जिनमें मुख्य कीट निम्न हैं:

1 अरंड का सेमिलूपर (कुबड़ा कीट): यह एक लेपिडोप्टेरा कुल का कीट है जिसका वयस्क पतंगा मजबूत भूरे रंग का होता है जिनके पिछले पंखों पर काले रंग का चिन्ह होता है। इस कीट का लार्वा चलते वक्त कुबड़ा (लूप बना कर) होकर चलता है जिसका शरीर धूसर काले रंग का होता है साथ ही सफेद लाल धारि होती है इसकी अंतिम अवस्था का लार्वा अंगुली से भी बड़े आकार का होता है जिसकी लम्बाई 60–70 एम.एम. होती है फसल पर हानि मुख्य रूप से लार्वा ही करता है। प्रथम अवस्था की सूँडी पत्तियों के ऊतकों को खाती है द्वितीय अवस्था में पत्तियों पर गोल छेद करता है आगे की अवस्था की सुंडियां पौधों की सम्पूर्ण पत्तियों को खा जाती है पौधों पर सिर्फ पत्तियों की शिराऐ शेष रहती हैं हालकि यह कीट तने पर आक्रमण नहीं करता परन्तू ज्यादा आक्रमण होने पर यह कीट अरंड के फूल एवं कैप्सुल को भी नुकसान पहुंचाता है इस कीट का पतंगा मजबूत सूंड होने के कारण नीबू वर्गीय फलों से रस चूस कर नुकसान पहुंचाता है। इस कीट का प्रकोप अगस्त–अक्टूबर महीने में अधिक होता है। इस कीट का पतंगा जुलाई से अगस्त में पत्तियों पर एक एक–कर अंडे देता है इसके अंडे नीले आकार के होते हैं। इस कीट का अधिक आक्रमण होने पर ऐसा लगता है जैसे पशुओं ने पौधों पर नुकसान पहुंचाया है।

2. केप्सुल बोररः यह अरंड के कैप्सुल को नुकसान पहुंचाने वाला कीट है जिसका वयस्क छोटा चमकीला पीले रंग का होता है, पंखों पर भूरे काले रंग के धब्बे होते हैं। इसके अंडे गुलाबी रंग के होते हैं तथा सूँडी लगभग 25 एमएम लंबी होती है, जो भूरे रंग गुलाबीपन लिए होता है इस कीट का लार्वा फसल को नुकसान पहुंचाता है अरंड पर इसका आक्रमण फूल बनने कि अवस्था से होता है जो फसल पकने तक नुकसान करता है। इस कीट कि पहली अवस्था कि सूँडी कैप्सुल के बाहरी आवरण को खाती है इसके बाद कैप्सुल में छेद करके बीज को नुकसान पहुंचाती है। यह कीट कैप्सुल के साथ जाल बनाकर रहता है कभी कभी लार्वा फूल में छेद करके अंदर फूल तथा अंतिम सिरे को खाता है इस कीट का लार्वा तने के अंदर भी चले जाता है तथा इसका प्रकोप अगस्त से नवम्बर तक होता है। यह कीट अरंड के साथ अमरूद के फलों के अंदर जाकर नुकसान भी करता है।

3. तंबाकू कि सूँडी या पत्तों को काटने वाली सूँडीः अरंड कि फसल पर तंबाकू कि सूँडी का आक्रमण भी होता है। इसका मोथ भूरे रंग का जिसके पंखों का विस्तार लगभग 30 एमएम होता है यह कीट अंडे पत्तों कि निचली सतह पर झुंड में देता है जो मादा पतंगे के पिछले हिस्से पर पाये जाने वाले बालों से ढके रहते हैं। पहली अवस्था का लार्वा गहरे हरे रंग का होता है बाद कि अवस्था में इसका रंग हल्के भूरे रंग के साथ काली नारंगी धारियां होती हैं। पहली अवस्था का लार्वा पत्तियों कि निचली सतह पर झुंड में रहते हैं तथा पत्तियों को खुरचकर खाते है जिसके कारण पत्तियां दूर से देखने पर सफेद रंग कि दिखाई देती है बाद में यह पूरे खेत में फैलकर पौधों के प्रत्येक भाग को नुकसान करते हैं पौधों पर सिर्फ मुख्य शिरा ही बचती है इस कीट का लार्वा बड़े होने पर एक खेत से दूसरे खेत में घूमता मिल जाता है।

4. हरा तेलाः यह एक छोटे आकार का कीट है। जिसके शिशु व प्रौढ़ हरे रंग के होते हैं। जो कोमल पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। जिसके कारण पत्तियां मूड जाती हैं। पत्ती के किनारे पीले पड़ जाते हैं। अंत में किनारों से सूख जाती हैं पौधों कि पत्तियां सूखने से कैप्सुल का निर्माण नहीं हो पाता है कीट के अधिक आक्रमण से फसल जली हुई दिखाई देती है। इस कीट का प्रकोप घनी फसल में ज्यादा होता है।

5. सफेद मक्खीः यह बहुत छोटे आकार का सफेद पंखों वाला छोटा कीट है, जिसका शरीर पीले रंग का होता है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं। जिसके कारण पत्ते पीले पड़ जाते हैं रस चूसने से पत्तियां मूड जाती हैं तथा गिरने लगती हैं इसके प्रकोप से पौधों में काली फफूँद के आक्रमण को बढ़ावा मिलता है जिससे पोधा छोटा व कमजोर हो जाता है।

6. थ्रिप्सः यह कीट पीले भूरे बेलन आकार के शिशु व प्रौढ़ पत्तों से रस चूसते हैं। ग्रसित पत्ते पर सफेद चकते पड जाते हैं। बाद में भूरे रंग कि धारिया में बदल जाते हैं ज्यादा आक्रमण होने पर पत्ते मुड़ जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पते सूख जाते हैं। फूल उगने के समय इस कीट के प्रकोप से कैप्सुल की पैदावार पर अधिक असर पड़ता है।

7. लाल अस्ट्पदी (माइट)ः पत्तों की निचली सतह पर लाल पीले रंग के शिशु व प्रौढ़ जाला बनाकर रहते हैं। इनके रस चूसने से पत्तों पर छोटे–छोटे सफेद धब्बे बन जाते हैं। ज्यादा प्रकोप से फूल नहीं बन पाते है। लाल अस्ट्पदी का शुष्क मौसम में अधिक प्रकोप होता है।

8.बालों वाली सूँडीः इस कीट का प्रकोप बारिश वाली फसल में होता है। इस कीट की सुंडिया छोटी अवस्था में इकट्ठी रह कर पत्तों की निचली सतह पर नुकसान करती है पत्तों को छलनी कर देती हैं व बाद की अवस्था में यह सारे खेत में फैल जाती है तथा इधर उधर घूमती रहती है इस कीट की दो प्रजातियां है बिहार हैयरी केटरपिलर व रेड हैयरी केटरपिलर। लाल बालों वाली सूँडियाँ जुलाई के दूसरे पखवाड़े से अगस्त मास के आखरी दिनों तक सक्रिय रहकर नुकसान करती है। दूसरी प्रजाति की सुंडियां अगस्त से अक्टूबर तक भारी नुकसान पहुचाती हैं इस कीट के मोथ पत्तों पर इकट्ठे अंडे देते हैं तथा अण्ड समूह को बालों से ढक देते हैं तथा प्रथम इन्स्टार लार्वा पत्तों की निचली सतह पर इकठ्ठा रहते हैं तथा पत्तों को खा कर छलनी कर देते हैं पौधों पर सिर्फ पत्तों की शिरायें रहती हैं।

अरंड में कीट नियन्त्रण कि विधिया

अ. कर्षण विधिया

1. खरीफ फसलों की कटाई के बाद गहरी जुताई करें जिससे मृदा में उपस्थित सेमिलूपर, तंबाकू कि सूँडी, व बालों वाली सूँड़ी के प्यूपा मृदा के बाहर आ जाते हैं जो पक्षियों द्वारा व अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं।
2. खेतों के आस–पास खरपतवारों को ना रहने दे क्योंकि ये कीट उन पर अंडे देते हैं।
3. अरंड की बुवाई अगस्त के प्रथम पखवाडे में करने से सेमिलूपर का आक्रमण कम होता है।

ब यांत्रिक विधिया

1. लाल बालों की सूँडी के पतंगे रोशनी की तरफ आकर्षित होते हैं। पहली बारिश के उपरान्त एक महीने तक प्रकाश प्रपंच का उपयोग कर के इकट्ठे करे।
2. तंबाकू की सूँडी एवं बालों वाली सूँडी का कीट समूह में अंडे देते है अतः अंडा समूह को पत्ते को तोड़ कर नष्ट कर दें।
3. इन दोनों कीटों के लिए पत्तों को छोटी सूंडियों समेत तोड़ ले तथा मृदा में गहरी दबा दे या मिट्टी के तेल के घोल में डालकर मार दें।
4. सेमिलूपर, तंबाकू की सूँडी एवं बालों वाली सूँडी की बड़ी सुंडियों को कुचलकर मार दें।
5 तंबाकू कि सूँडी के लिए फेरोमोन ट्रेप 8–10 प्रयोग कर कीटों को पकड़ा जा सकता है।

कटाई: गुच्छे में कैप्सुल का रंग पीला पड़ जाए और कुछ फल पक कर सुख जाएं तो गुच्छे को काट कर सूखने के लिए डाल दें। पहला गुच्छा बुवाई से 90–120 दिन बाद पककर तैयार हो जाता है। लगभग 25–30 दिन के अन्तर पर विभिन्न क्रम के गुच्छे पकते रहेंगे, अतः 4–6 कटाई करनी पड़ सकती है। सिचिंत दशा में आखरी कटाई अप्रैल अंत या मई के पहले सप्ताह तक हो जाती है।

कढ़ाई: खलियान में गुच्छों के सूखने के बाद झाड़– पीट कर कैप्सुल को डंडियो की सहायता से अलग कर ले अब फलों को डंडो से पीट कर या मड़ाईयंत्र से दाने निकाल ले। ध्यान रखें बीज टूटने न दें एवं बीज पर छिलका भी न रहे अन्यथा बिक्री मूल्य कम हो जाएगा।

उपज: बारानी अवस्था में 15 से 30 कुन्तल व सिंचित में 40–60 कुन्तल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हो जाती है।

कपास की उन्नत खेती हेतु समेंकित कीट प्रबंधन

देवा राम बाज्या[1], झूमर लाल[2] एवं हरीश कुमार[3]
[1]कृषि अनुसंधान केन्द्र, फतेहपुर–शेखावाटी
[2]श्रीकर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (जयपुर) राजस्थान–303329
[3]कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक), भा.कृ.अनु.प., पूसा नई दिल्ली–110012

कपास भारत में उगाई जाने वाली एक प्रमुख नकदी फसल है तथा औद्योगिक एवं निर्यात की दृष्टि से अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। देश के कुल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 3 प्रतिशत, औद्योगिक उत्पाद में 14 प्रतिशत, रोजगार उपलब्धता में 18 प्रतिशत तथा निर्यात में लगभग 30 प्रतिशत है।

बी.टी. कपास के उगाने से भारत कपास की उत्पादकता में सुदृढ़ हुआ है। बी.टी. कपास की खेती 2002 से प्रचलन में आई तथा जल्दी ही 9 मिलियन हेक्टेयर भू–भाग पर उगाई जाने लगी जबकि कपास का संपूर्ण एरिया 11.74 मिलियन हेक्टेयर है। भारत में बी.टी. कपास की उत्पादन क्षमता केवल 4.36 कि.ग्रा./हेक्टेयर है जबकि विश्व की सामान्य उत्पादन क्षमता 740 कि.ग्रा./हेक्टेयर है। कपास की फसल की कम पैदावार के लिए कई जैविक एवं भौतिक कारण उत्तरदायी हैं। जैविक कारणों में कपास की कम पैदावार का प्रमुख कारण कीट हैं। कपास की फसल की सबसे अधिक क्षति रस चूसने एवं गूले (डोडी, बॉल या टिण्डे) भेदने वाले कीटों से होती है जबकि बी.टी. कपास में रस चूसने वाले एवं पत्तियों को खाने वाले कीट एवं बीमारियाँ प्रमुख हैं। आजादी के बाद हमने कृषि के क्षेत्र में हरित क्रांति का सूत्रपात किया तभी आज हम एक अरब लोगों के भोजन की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ हुए है। लेकिन इस प्रक्रिया में हमने पौध संरक्षण रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग किया जिसके परिणाम स्वरूप हमारी फसलों के मित्र तथा शत्रु कीटों का संतुलन बिगड़ गया। लेकिन अभी कुछ वर्षों से कीट प्रबन्धन की आवश्यकता समझी गई तथा इसको क्रियान्वित करने का भरपूर प्रयत्न किया जा रहा है। कीट प्रबन्धन के लिए अतिआवश्यक है कि किसानों को फसलों में लगने वाले रोगों के लक्षण व कीटों की पहचान के साथ–साथ उनके प्राकृतिक शत्रु कीटों की भी पहचान हो। वस्तुस्थिति यह है कि शत्रु–कीट हानिकारक कीटों से अधिक संख्या में होते हैं। प्रायः किसान मित्र तथा शत्रु कीटों में भेद नहीं कर पाते, इसलिऐ कभी–कभी किसान मित्र कीटों को नाशीजीव समझकर रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कर देते हैं। जिसके कई दुष्परिणाम सामने आऐ हैं जैसे मित्र कीटों की क्षति, वातावरणीय प्रदूषण, आर्थिक नुकसान कीट पुनरूत्थान, कीटों में सहनशीलता इत्यादि, जिसके फलस्वरूप कुल मिलाकर किसानों को भारी क्षति होती है। विश्व में कपास में 1326 प्रजातियाँ कीटों की पाई जाती हैं तथा इनमें से भारत में 166 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें से एक दर्जन से ज्यादा कीट आर्थिक नुकसान पहुँचाते हैं। इन कीटों एवं रोगों का प्रबन्धन समन्वित रूप से करना पर्यावरण, फसल व मानवजाति के लिए अत्यावश्यक है। इस विधि में उपयुक्त संभव उपायों को मिलाकर कीटों की संख्या को नुकसान स्तर की सीमा से नीचे रखा जाता है।

समन्वित कीट प्रबन्धन की आवश्यकता क्यों है:

समन्वित कीट प्रबन्धन की आवश्यकता निम्न कारणों से है:

- लाभदायक मित्र कीटों की प्रचुर संख्या बनाए रखने के लिए।
- अंधाधुंध कीटनाशकों के उपयोग के कारण बढ़ता हुआ प्रदूषण रोकने के लिए।
- कीटों में कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधक शक्ति पैदा हो गई है। इसलिए कीटनाशकों का अधिक मात्रा में उपयोग करना पड़ता हैं अतः प्रतिरोधक क्षमता को रोकना।

समन्वित कीट प्रबन्धन कैसे करें:

फसल उत्पादन प्रणाली में समन्वित कीट प्रबन्धन विभिन्न विधियों द्वारा खेत के चयन से लेकर फसल की कटाई तक किया जाता है। इस पद्धति में कीट, बीमारी,

खरपतवार एवं चूहों के संगठित नियंत्रण हेतु सस्य, यांत्रिक, जैविक व रासायनिक विधियाँ अपनाई जाती हैं।

रस चूसने वाले कीट

कपास का थ्रिप्स/गुझिया/चूरड़ा कीट : ये कीट कपास की फसल में क्षति करने के लिहाज से कुछ ही वर्षों से मुख्य कीट हो गया है। यह उत्तरी एवं मध्य भारत में काफी क्षति करता है। प्रभावित पौधें कमजोर, झाड़ीनुमा तथा छोटे रह जाते हैं और इन पर टिण्डे (फल) कम, कुरुप तथा छोटे आकार में लगते हैं। कीट पौधों पर एक प्रकार का मधुस्त्राव करते हैं जिस पर काली फफूंदी उगने से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है व चीटियाँ आकर्षित होती हैं।

आर्थिक क्षति स्तर : 10 व्यस्क या निम्फ प्रति पत्ती।

कपास का फुदका/तेला कीट : व्यस्क कीट लगभग 3 मिमी. लम्बा, हरा पीला तथा पंखों पर पीछे की ओर दो काले धब्बे होते हैं। ये कीट तिरछे–तिरछे चलते हैं। एक वयस्क मादा पीले रंग के 15 अण्डे पत्तियों की निचली सतह पर नसों के अन्दर देती है। अण्डों से निम्फ 6–10 दिन में निकल आते हैं तथा निम्फ से वयस्क बनने में 7–21 दिन लगते हैं। शिशु तथा वयस्क पत्ती की निचली सतह से रस चूसकर फसल को हानि पहुँचाते हैं। इनके प्रकोप से पत्ते टेढ़े होकर नीचे की तरफ मुड़ जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्ते लाल होकर सूखकर गिर जाते हैं।

आर्थिक क्षति स्तर : 2 व्यस्क या निम्फ प्रति पत्ती।

सफेद मक्खी : ये कीट कपास की वानस्पतिक वृद्धि के समय से टिण्डे बनने तक फसल को प्रभावित करते हैं तथा कपास की पत्तियों के मरोड़िया (लीफ कर्ल) रोग को एक पौधें से दूसरे स्वस्थ पौधों में फैलाता है। ये मक्खी छोटी (लगभग 1–1.3 मि.मी.) लेकिन आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। व्यस्क व निम्फ पौधों के मुलायम भागों से रस चूसते जिससे पौधें कमजोर हो जाते हैं व फसल के प्रजनक भागों की वृद्धि कम हो जाती है। कीट मधु स्त्राव भी करते हैं जिस पर काली फफूंदी उगने से पत्तियों एवं खुले टिण्डों की कपास का रंग काला हो जाता है जिससे पौधों की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है।

आर्थिक क्षति स्तर : 8–10 व्यस्क या निम्फ प्रति पत्ती।

माहू/चैंपा कीटः व्यस्क व निम्फ छोटे आकार के 2.3 मिमी. लम्बे, मुलायम शरीर युक्त तथा इनका रंग हरा धूसर होता है जो पत्तियों की निचली सतह पर झुंड में रहकर रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ ऐंठने लगती हैं तथा बाद में झड़ जाती हैं। प्रभावित पौधों पर रोग कारक विषाणु पनपते हैं तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी प्रभावित होती हैं।

आर्थिक क्षति स्तर : 10 फीसदी प्रभावित पौधें।

मिली बग : मिली बग एक सर्वभक्षी कीट है जो मालवेसी, सोलेनेसी और लेग्यूमिनेसी परिवार के पौधों को अधिक पसंद करता है। मिली बग का शरीर 3.7 मिमी. लम्बा होता है। अपरिपक्व व नयी मादाएं स्लेटी–गुलाबी रंग की होती हैं जिनका शरीर सफेद मोम से ढ़का रहता है। प्रौढ़ मादाओं का शरीर मुलायम तथा 2.5 से 4.0 मिमी. लम्बा, अण्डाकार एवं थोड़ा सा चपटा होता है। मादाओं के शरीर पर 9 खण्डों की श्रृंगिका तथा पृष्ठीय शग में गुदा से मुखांग तक पूरे शरीर पर नलियां पाई जाती हैं जो टांगों एवं लम्बी सीटी पर नहीं होती। नर कीट में एक जोड़ी साधारण पंख, लम्बी श्रृंगिका व सफेद मोम के बन्द तन्तु पीछे की तरफ उभरे दिखाई पड़ते हैं। कपास में आक्रमण से पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा टिण्डे देरी से खिलते हैं। परिणामस्वरुप उपज तथा गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं। कीट द्वारा पौधों के मुलायम ऊतकों में राल पहुंचाने से पत्तियां सिकुड़कर मुड़ जाती हैं।

मिलीबग्स एवं चींटियों का सहजीवन

मिलीबग अपने मीठे मधुस्त्राव से चींटियों को प्रलोभन देकर बदले में उनसे स्वयं के परिवहन में सहायता तथा परभक्षी, परजीवी एवं अन्य प्राकृतिक शत्रुओं से रक्षा करवाती हैं। मिलीबग के समूह में उपस्थित कचरा एवं अतिरिक्त मधुस्त्राव जो मिलीबग झुण्ड को नुकसान कर सकता है, उसे चींटियाँ साफ करने का कार्य करती हैं।

कपास की धूसर कीट : व्यस्क कीट 4.5 मिमी. लम्बा, धुंधला धूसर तथा पंख मटमेंले सफेद पारदर्शी होते हैं। निम्फ पंख विहीन होते हैं। व्यस्क व बच्चे अविकसित बीजों

से रस चूसते हैं और बीज ठीक से पक नहीं पाते तथा कम वजन के होते हैं। जिनिंग के समय कीटों के पिचककर मरने से रुई की गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा बाजारु मूल्य कम हो जाता है। अन्य कीटों के नियंत्रण करने के साथ इसका नियंत्रण हो जाता है।

कपास का लाल कीट : कीट 1.5–2.0 से.मी. लम्बा, गहरे लाल रंग का होता है व इसके पेट पर सफेद रंग की धारियाँ पाई जाती हैं। आगे वाले पंखों पर एक–एक काला धब्बा होता है। निम्फ पंख विहीन, लाल रंग के होते हैं। फसल 60–80 दिनों की होने पर ये कीट दिखाई देता है। निम्फ एवं व्यस्क दोनों पौधों की पत्तियों तथा हरे टिण्डों से रस चूसते हैं। प्रभावित टिण्डों पर पीले निशान या धब्बे दिखते हैं। साथ ही बॉल्स में बन रही रुई भी धब्बेदार हो जाती हैं। अन्य कीटों के नियंत्रण करने के साथ इसका नियंत्रण भी हो जाता है।

विभिन्न फसल अवस्था पर लगने कीट वाले प्रकोप

फसल अवस्था	कीट प्रकोप
1 से 30 दिन (वानस्पतिक अवस्था)	चेपा, जैसिड, थ्रिप्स, मकड़ी, सफेद मक्खी, मिलीबग, इत्यादि।
31 से 60 दिन (स्क्वायर बनने की अवस्था)	–उपरोक्त सभी–
61 से 120 दिन (फूल व टिण्डा बनने की अवस्था)	सफेद मक्खी, मिलीबग, चीत्तिदार सुण्डी, तम्बाकू वाली लट, हरी सुण्डी, गुलाबी सुण्डी इत्यादि।
121 से 180 दिन (टिण्डा फटने की शुरुआत से पकने तक)	मिलीबग, इत्यादि।

कपास में समेंकित कीट प्रबंधन कैसे करें–

बुवाई से पहले की तैयारी

- क्षेत्रवार निर्देशित संकर (हाइब्रिड) किस्म का चयन करें।
- बीज की दर 750 ग्रा./एकड़ रखें।
- बीज को 7 ग्रा. इमिडाक्लोशेप्रिड/किलो ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- जल निकास का उचित प्रबन्धन होना चाहिए।

शस्य कृषि क्रियाएं:

1. फसल चक्र अपनाऐं। एक ही खेत में लगातार नरमा/कपास की फसल न लें।
2. खरपतवार एवं फसलों के अवशेष खेत में नहीं रहने दें या इससे कम्पोस्ट खाद तैयार करें अथवा नष्ट कर दें।
3. खरपतवार जैसे– कांग्रेस घास, गुटपटना, शंकरी एवं इटसिट (साटी) इत्यादि पर कई तरह के कपास के कीट पनपते हैं इनसे कपास की खेती मुक्त होनी चाहिए। परजीवी एवं अवांछित पौधों को तत्काल निकाल कर नष्ट करें।
4. मिलीबग से अधिक प्रकोपित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
5. अन्तर सस्य फसल पद्धति अपनाएं जैसे कपास-मक्का, कपास-लोबिया, कपास-मोठ, कपास- सोयाबीन/मूंग इत्यादि। इससे कीट एवं रोगों का प्रकोप कम होता है एवं नत्रजन का स्थिरीकरण होता है साथ ही भूमि की उर्वरकता में सुधार होता है।
6. रासायनिक उर्वरकों का निर्धारित मात्रा में व उपयुक्त तरीकों से प्रयोग करना चाहिये अन्यथा उनके अनुचित प्रयोग से नाशीजीवों के प्रकोप बढ़ने की संभावना रहती हैं।
7. पौधों की ऊंचाई जब घुटनों तक हो जाये तो उनपर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये ऐसा करना फसल के हित में तो हैं, साथ में मिट्टी–जनित जीवाणु व हानिकारक कीटों की भी क्षति होगी।
8. बीटी नरमा के खेत के पास अरंडी, मूंग, ढैंचा व भिण्डी न लगायें क्योंकि ये तम्बाकू की लट के पोषक पौधें है।

यांत्रिक विधियाँ :

1. प्रभावित पौधों व पौधों के भागों को नष्ट करें।
2. कीट एवं रोग प्रभावित अधखिले फूलों को एवं इनकी हुई बढ़वार वाले फूलों को नष्ट करें।
3. फसल की 110 दिन की बढ़वार अवस्था पर ऊपरी अंतिम (टर्मिनल) कोमल शाखाओं की कटाई करें।

4. कपास की फसल में व्यस्क कीट को आकर्शित करने हेतु फेरोमोन ट्रैप, प्रकाश प्रपंच का बड़े स्तर पर प्रयोग करें तथा ट्रैप में आए कीटों को नष्ट करें साथ ही स्टिकी ट्रैप का प्रयोग भी करें। ट्रैप में लगे ल्यूर को 20 दिनों में बदलते रहना चाहिए। ट्रैपों को फसल की ऊंचाई से 30 से.मी. ऊपर रखना चाहिए।
5. माहू तथा सफेद मक्खी की निगरानी के लिए पीले चिपकने वाले पाश (ट्रैप) लगाने चाहिए।
6. माहू/चेंपा कीट से प्रभावित शाखाओं को पौधों से काटकर नष्ट कर देना चाहिए।
7. लाल कपास के कीट को पनपने से पहले पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
8. कपास के धूसर कीट से प्रभावित टिण्डों की तुड़ाई करके नष्ट कर देना चाहिए।
9. फसल जब 20 दिन की हो जाऐ तो उसमें निराई–गुड़ाई करनी चाहिऐ जिससे खरपतवार नष्ट हो जायेगें और फसल में अच्छी वृद्वि होगी।
10. नाशीकीट प्रबन्धन में निरीक्षण करना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है जो निश्चित अन्तराल पर करते रहना चाहिए ताकि कीटों व बिमारियों के प्रकोप का समय रहते पता चल सके व उचित प्रबन्धन किया जा सके।

जैविक विधियाँ :

1. क्षेत्र में परजीवी एवं शिकारी कीट की सुरक्षा कर संख्या बढ़ाएं।
2. रस चूसने वाले कीट, चेपा, जैसिड आदि के नियंत्रण हेतु यदि उपलब्ध हो तो क्राईसोपा कीट के प्रथम अवस्था लार्वा 20000 प्रति एकड़ की दर से 15 दिन के अंतराल से दो बार फसल पर छोडें।
3. कपास की फसल में बुवाई के 40 दिन बाद खेत में बाल वर्म दिखाई देते ही ट्राइकोग्रा.ा कीलोनस कपास प्रजाति के कीट (60000 प्रति एकड़ प्रति सप्ताह की दर से 6 बार) छोडें।
4. जैविक नियंत्रण के जन्तु समूह को सुरक्षित करने हेतु कपास की हर दस कतार के बाद ही दो लाइनें मोठ या बाजरे की बुवाई करें।
5. कीट खाने वाले पक्षियों (कौवा, मेंना, नीलकंठ आदि) के बैठने हेतु प्रति हेक्टेयर 4 से 5 बसेरे बनाएं।
6. कीट एवं प्रतिरक्षकों (लाभदायक) का अनुपात 2:1 रखें।
7. प्रकृति में पाए जाने वाले परभक्षियों के क्रियाकलापों को बढ़ावा देना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण :

1. आर्थिक दृष्टि से लघुतम नुकसान होने की अवस्था में आवश्यकता अनुसार उचित व सुरक्षित रसायनों का प्रयोग करें।
2. कपास में कीट नियंत्रण हेतु कभी भी एक कीटनाशी के साथ अन्य कीटनाशी नहीं मिलाएं।
3. कपास की फसल में एक ही रसायन का प्रयोग बार–बार नहीं करें तथा ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करें जिनके उपयोग के बाद कीट बार–बार प्रकट होता रहें।
4. ऐसे रसायनों का प्रयोग नहीं करें, जिनसे वानस्पतिक वृद्धि होती है।
5. सिन्थैटिक पाइरेथ्राइड (जैसे फैनवलरेट, साइपरमेंथ्रीन, डैकामेंथ्रीन, एल्फामेंथ्रीन आदि) का प्रयोग नहीं करें ।
6. नीम आधारित कीटनाशकों का प्रयोग करें जैसे नीम के तेल का इमल्सन (0.003 प्रतिशत) व निम्बोली कीटनाशी (0.15 प्रतिशत) या 6.8 किलो पिसी हुई निम्बोली प्रति एकड़ प्रयोग में लें।
7. छिड़काव/भुरकाव हेतु उपयुक्त यंत्र का प्रयोग करें। छिड़काव 10 बजे से पहले व सायं 4 बजे के बाद किया जाए जिससे शिकारी एवं मित्र कीटों की संख्या में कमी न हो।
8. छिड़काव हवा की दिशा में ही करें तथा इस प्रकार करें कि हवा पौधों की पत्तियों के ऊपर व नीचे दोनों ओर पहुँच सके।
9. खरपतवार नियंत्रण हेतु समय पर खरपतवारनाशक रसायनों का सही मात्रा में सही प्रकार से प्रयोग करें

तथा पौध संरक्षण उपकरण को साबुन से धोकर साफ करके रखें।

10. कीटनाशकों के छिड़काव के लिए पानी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करें तथा इनको मुख्य तने के चारों तरफ मृदा पर भी छिड़काव करें।

11. जब रस चूसने वाले कीटों की संख्या दिए गए आर्थिक क्षति स्तर (ई.टी.एल.) से ऊपर निकलने लगे तो निम्न कीटनाशकों का बदल–बदल कर छिड़काव करना चाहिए। फुदके, सफेद मक्खी या माहू के लिए–इमिडाक्लोरोप्रिड 200 एस.एल. की 100 मिली. मात्रा प्रति हैक्टर या थायोमिथोक्सॉम 100 मिली. मात्रा प्रति हैक्टर या डाईफेन्थुरान 50 डब्ल्यू.पी. 2ग्रा./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

12. मिलीबग के उचित नियंत्रण हेतु चींटियों की रोकथाम जरूरी है जिसके लिए चींटियों के समूह एवं बिलों को ढूंढकर उन पर क्लोरोपाइरिफॉस 20 ई.सी. 2.5 मिली. प्रति लीटर पानी या 5 प्रतिशत पाऊडर 25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

13. मिलीबग के नियंत्रण के लिए डाईमिथोएट 30 ई.सी. 2 मिली/लीटर, क्लोरोपाइरिफॉस 20 ई.सी. 2 मि.ली., इमिडाक्लोरोप्रिड 200 एस.एल. 1 मिली या मैलाथियान 2.5 मिली. या थायोडिकार्ब 75 डब्ल्यू.पी. 2 ग्रा. या एसिटामिप्रिड 20 एस.पी. 1ग्रा. को प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

14. चूहा नियंत्रण हेतु चूहों के बिलों को नष्ट करें तथा चूहा–नाशक रसायन का प्रयोग करते हुए चूहा नियंत्रण अभियान के रुप में करें।

15. कपास फसल की कटाई के बाद फसल अवशेषों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए।

नोट : किसी भी कीटनाशक का इस्तेमाल करते समय व घोल बनाते समय स्टीकर सर्फ, सैण्डसविटा, टीपोल आदि आवश्यक रुप से मिलाएं।

बाजरे की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियां

एस.पी. सिंह, मुकेश शंकर एस. एवं निरुपमा सिंह
आनुवंशिकी संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

बाजरा शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों की प्रमुख फसल है। यह फसल अधिक तापमान एवं सूखे के प्रति सहनशील है। कम वर्षा एवं अधिक तापक्रम वाले क्षेत्रों में खेती करने वाले किसानों के लिए, यह फसल एक अच्छा विकल्प है एवं किसानो को आत्म निर्भर बनाने में काफी हद तक सहायक है। पौष्टिकता में इसका कोई जबाब नहीं है। इस फसल की खेती वर्ष 2020–21 में, 7.41 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में सिंचित एवं असिंचित दोनों अवस्थाओं में की गई। वर्ष 2020–21 के दौरान, बाजरे का उत्पादन 10.3 मिलियन टन एवं उत्पादकता 1391 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। बाजरे का लगभग 90 प्रतिशत क्षेत्रफल, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा राज्यों के अन्तर्गत आता है। भारत में इस फसल का उपयोग मुख्यतः दाने एवं चारे के रूप में होता है।

उत्पादन तकनीकी

खेत की तैयारीः खेत की समय से तैयारी, फसल की समय से बुवाई सुनिश्चित करती है। खेत की तैयारी इस प्रकार करनी चाहिए कि पूर्व फसल के अवशेष एवं अवांछित खरपतवार अच्छी तरह मिट्टी के नीचे दब जाये एवं मिट्टी भुरभुरी हो जाये। एक गहरी जुताई, मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए उसके बाद 2–3 जुताई, डिस्क द्वारा की जा सकती है। खेत से अतिरिक्त पानी की निकासी के लिए, खेत का समतल होना अति आवश्यक है।

किस्मों का चुनावः अलग–अलग क्षेत्रों के लिए बाजरे की विभिन्न किस्मों को विकसित किया गया है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए, क्षेत्र के अनुसार किस्मों का चुनाव करना अति आवश्यक है। बाजरा उत्पादन करने वाले क्षेत्रों को तीन भागों में बाँटा गया है। जोन (क्षेत्र) 'ए' के अन्तर्गत, राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली एवं पंजाब राज्य आते हैं। राजस्थान, हरियाणा एवं गुजरात राज्यों के 400 मिमी. से कम वर्षा वाले क्षेत्र जोन 'ए'1 के अन्तर्गत आते हैं। जोन (क्षेत्र) 'बी' के अन्तर्गत महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु राज्य आते हैं। जोन (क्षेत्र) के अनुसार, बाजरे की विभिन्न किस्में विकसित की गयी हैं। किस्मों के चुनाव में किसान भाइयों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि किस्में नवीन, दाने एवं सूखे चारे की अधिक उपज देने वाली एवं जैविक एवं अजैविक तनावों के प्रति सहनशील हों।

ए1 जोन (क्षेत्र) के लिए नवीन किस्मेंः इस क्षेत्र के लिए बाजरे की नवीनतम किस्मों में बी.एच.बी. 1202, बलवान, जी.के. 1116, आर.एच.बी. 223, जे.के.बी.एच. 1008, एम.पी. एम.एच. 21 एवं एच.एच.बी. 272 शामिल हैं।

ए जोन (क्षेत्र) के लिए नवीन किस्मेंः पी.बी. 1852, जे. के.बी.एच. 1326, डी.एच.बी.एच. 1397, प्रोएग्रो 9450, पूसा 1201, पी.बी. 1705, एक्स.एम.टी. 1497, के.बी.एच. 3940, बायो 8145, जे.के.बी.एच. 1100, 86एम82, 86एम84, एवं पी.एच.बी. 2884 आदि बाजरे की नवीनतम किस्में ए जोन के लिए विकसित की गई हैं।

बी जोन (क्षेत्र) के लिए नवीन किस्मेंः इस क्षेत्र के लिए नवीनतम संकर किस्में फुले महाशक्ति, बलवान, महाबीज 1008 एवं पी.बी.एच. 306 आदि विकसित की गयी हैं।बाजरे की नवीनतम किस्मों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित तालिका में दी गई है

तालिकाः बाजरे की नवीनतम किस्में (2016–2021)

उन्नत किस्में	अनुमोदित वर्ष	पकने की अवधि	दाने की उपज (किग्रा./हे.)	अनुमोदित क्षेत्र
ए1 जोन (क्षेत्र)				
बी.एच.बी. 1202	2018	76	1776	राजस्थान

बलवान	2018	86	3103	राजस्थान
जी.के. 1116	2018	79	3644	राजस्थान
आर.एच.बी. 223	2018	71	2969	राजस्थान गुजरात एवं हरियाणा
जे.के.बी.एच. 1008	2016	75	2383	राजस्थान गुजरात एवं हरियाणा के सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए
एम.पी.एम.एच. 21	2016	75	2469	राजस्थान गुजरात एवं हरियाणा के सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए
एच.एच.बी. 272	2016	74	2421	राजस्थान गुजरात एवं हरियाणा के सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए
ए जोन (क्षेत्र)				
पी.बी. 1852	2019	82	3383	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
जे.के.बी.एच. 1326	2019	79	3292	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
डी.एच.बी.एच. 1397	2019	80	3390	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
प्रोएग्रो 9450	2019	86	3861	उत्तर प्रदेश
पूसा 1201	2018	80	2810	दिल्ली
पी.बी. 1705	2018	79	3640	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
एक्स.एम.टी. 1497	2016	79	3693	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
के.बी.एच. 3940	2016	86	3738	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
बायो 8145	2016	87	3630	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
86एम82	2016	84	3806	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
86एम84	2016	85	3849	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली
पी.एच.बी. 2884	2016	88	3306	पंजाब
बी जोन (क्षेत्र)				
फुले महाशक्ति	2019	83	2581	महाराष्ट्र
बलवान	2018	85	4444	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना एवं तमिलनाडु
महाबीज 1005	2017	81	2994	महाराष्ट्र
पी.बी.एच. 306	2017	87	3828	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना एवं तमिलनाडु

बुवाई का समयः खेत में बुवाई के समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए। बारानी अथवा असिंचित क्षेत्रों में, मानसून की पहली वर्षा के बाद, खेत में पर्याप्त नमी होने पर बुवाई करनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक बाजरे की बुवाई की जा सकती है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचारः बीज दर, प्रजाति की अंकुरण क्षमता, 1000 दानों का भार एवं पौधों की संख्या प्रति हेक्टेयर पर निर्भर करती है। बाजरे की फसल में बीज की मात्रा 3–5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रयोग की जाती है। भूमि एवं बीज–जनित बीमारियों एवं कीटों की रोकथाम के लिए, बीज उपचार अति आवश्यक है। फसल को मृदाजनित रोगों से बचाने के लिए, बीज को थाइरम 75% (3 ग्रा. प्रति किग्रा बीज) से उपचारित कर लेना चाहिए। स्मट रोग के नियंत्रण के लिए बीज को 300 मेंश सल्फर (4 ग्रा. प्रति किग्रा बीज) पाउडर से उपचारित किया जा सकता है। बीज को 10% नमक के घोल में डुबोकर, अरगट रोग से प्रभावित बीजों को दूर किया जा सकता है। उन क्षेत्रों में जहाँ डाउनी मिल्ड्यू होने की सम्भावना हो, बीज को मेंटालेक्जाइल (6 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज) से उपचारित कर लेना चाहिए।

बुवाई की विधिः अधिक उपज प्राप्त करने एवं खेत को खरपतवार रहित रखने के लिए, बाजरे की बुवाई हमेशा कतारों में करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 45–60 सेमी. एवं पौधें से पौधें की दूरी 12–15 सेमी. रखनी चाहिए। खेत में पौधों की संख्या, 18 पौधें प्रति वर्ग मीटर होनी चाहिए। बीज को भूमि में 2–3 सेमी की गहराई पर बोना चाहिए। जिन क्षेत्रों में औसत वार्षिक वर्षा 400 सेमी से कम हो वहां पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी एवं पौधों की प्रति हेक्टेयर संख्या 1 लाख के आस–पास होनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में औसत वार्षिक वर्षा 400 सेमी से अधिक हो वहां पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी एवं पौधें से पौधें की दूरी 10–15 सेमी एवं पौधों की प्रति हेक्टेयर संख्या 1.75–2.00 लाख के आस–पास होनी चाहिए।

उर्वरक एवं प्रयोग की विधिः उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले मिट्टी की जाँच करा लेनी चाहिए। उर्वरकों की मात्रा सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों के लिए अलग–अलग होती है।

सिंचित क्षेत्रों के लिए उर्वरकों की मात्राः सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन 60–80 किग्रा., फॉस्फोरस 30–40 कि.ग्रा. एवं पोटाश 30–40 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः नत्रजन की आधी एवं फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय दी जानी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा दो भागों में तीन सप्ताह एवं 5 सप्ताह बाद प्रयोग कर सकते हैं। यदि भूमि में जस्ते की कमी हो तो जिंक सल्फेट 10 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रयोग किया जा सकता है। वानस्पतिक अवस्था में अधिक वर्षा होने की स्थिति में, नत्रजन की अतिरिक्त मात्रा (20 किग्रा प्रति हेक्टेयर) दी जा सकती है।

असिंचित क्षेत्रों के लिए उर्वरकों की मात्राः शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में नत्रजन 30–40 किग्रा., फॉस्फोरस 25 किग्रा. एवं पोटाश 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रणः अच्छी पैदावार लेने के लिए, समय से खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है। अन्यथा उपज में 70 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। बुवाई से 30 दिन तक, खेत को खरपतवार मुक्त रखना अति आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण के लिए, पहली निराई खुरपी द्वारा बुवाई के 15 दिन बाद करनी चाहिए। इसे 15 दिन के अन्तराल पर दोहराना चाहिए। यदि फसल की बुवाई मेंढ़ पर की गई है तो खरपतवार नियंत्रण ट्रैक्टर एवं रिज मेंकर द्वारा भी किया जा सकता है। अगर मजदूरों की कमी है तो खरपतवारनाशक एट्राजिन 1 किग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के तुरन्त बाद अथवा 1–2 दिन बाद करने से खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। एट्राजीन 0.5 किग्रा सक्रिय तत्व को 800 लीटर पानी में घोलकर भी छिड़काव किया जा सकता है।

सिंचाईः कल्ले बनने की अवस्था, फूल आने एवं दाने बनने के समय, खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। यदि इस अवस्था में वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए, अन्यथा उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

पौध संरक्षणः बाजरे में मुख्यतः डाउनी मिल्ड्यू, अर्गट, स्मट, ब्लास्ट एवं रस्ट रोगों का प्रकोप होता है। किसान

भाई रोगरोधी किस्मों का चुनाव कर, उचित कृषि क्रियाओं एवं रसायनों का प्रयोग कर रोगों से होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं। डाउनी मिल्ड्यू अधिक हानि पहुँचाने वाला मुख्य रोग है। इस रोग की तीव्रता अधिक होने से, उपज में 60–70 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। यदि बीज को मेंटालेक्जाइल (6 ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति किग्रा. बीज) से उपचारित किया जाये तो इस रोग को काफी हद तक रोका जा सकता है। खड़ी फसल में भी मेंटालेक्जाइल (125 मिग्रा. प्रति लीटर) का प्रयोग किया जा सकता है। इसका छिड़काव फूल आने के एक सप्ताह पूर्व करने से रोग रहित बालियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

अर्गट रोग के लिए रोग रोधी किस्मों जैसे आई.सी.टी. पी. 8203 एवं आई.सी.एम.वी. 155 का प्रयोग करना चाहिए। इस रोग के नियंत्रण के लिए कोई प्रभावी रसायन नहीं है। बीज को 10 प्रतिशत नमक के घोल (1 किग्रा. नमक + 10 लीटर पानी) में डुबोने से अर्गट से प्रभावित बीज घोल की ऊपरी सतह पर आ जाते हैं। इन बीजों को बाहर निकालकर अर्गट के प्रकोप को कम किया जा सकता है। पुष्पन अवस्था में, थीरम 0.2% के 2–3 पर्णीय छिड़काव करने चाहिए।

स्मट रोग का नियंत्रण करने के लिए, संकुल किस्में डब्ल्यू.सी.सी. 75, आई.सी.टी.पी. 8203 एवं आई.सी.एम.वी. 155 का प्रयोग करना चाहिए। बीज को सल्फर पाउडर (4 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज) से उपचारित करके भी इस रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है। रोग ग्रसित बालियों को खेत से निकाल देना चाहिए। बूट पत्ती अवस्था में केप्टाफोल अथवा जिनेब का छिड़काव करना चाहिए।

पिछले कुछ वर्षों से पत्ती ध्ब्बा (ब्लास्ट) रोग का प्रकोप निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इस रोग में कार्बेन्डाजिम या थायोफेनेट मिथाइल 0.05 प्रतिशत (0.5 किग्रा. रसायन एवं 1000 लिटर पानी) की दर से छिड़काव करने से रोग की तीव्रता में कमी की जा सकती है। फसल में रतुआ रोग का प्रकोप होने पर फफूँदनाशक मेंकोजेब का 2 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से रोग की तीव्रता में कमी की जा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर 10–12 दिन के बाद छिड़काव दोहराया जा सकता है।

कीटों का प्रबंधनः बाजरे की फसल में कुछ क्षेत्रों में कीट–पतंगों की समस्या भी आती है। इस फसल को नुकसान पहुंचाने वाले मुख्य कीट पतंगों का प्रबंधन निम्न प्रकार है

सफेद ग्रबः राजस्थान एवं गुजरात राज्यों में इसका प्रकोप सामान्यतः जुलाई–अगस्त के महीनों में अधिक होता है। यह 5– 25 प्रतिशत तक हानि पहुंचा सकता है। बुवाई के समय कार्बोफ्युरान 3 जी का 12 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग कर, इसके प्रकोप को कम किया जा सकता है।

शूट फ्लाईः इसका प्रकोप गुजरात एवं तमिलनाडु राज्यों में पाया जाता है। इसके लार्वा पौध अवस्था में फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए, इंडोसल्फान के 1 मिली./ली. पानी के छिड़काव, अंकुरण के 10–20 दिन बाद कर देना चाहिए।

ग्रास हॉपरः ग्रास हॉपर के नियंत्रण के लिए, स्पाइनोसैड के 1 मिली./ली. पानी के घोल का छिड़काव कर देना चाहिए।

ग्रे वीविलः ग्रे वीविल का प्रकोप होने पर मेंलाथिआन 5% का 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।

इअर हेड बगः यह कीट दानों को दुधिया अवस्था में नुकसान पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए कार्बेरिल एस.पी. की 3 किग्रा मात्रा 500 लीटर पानी में घोलकर, बालियों पर छिड़काव करना चाहिए।

तना छेदकः तना छेदक की रोकथाम के लिए इंडोसल्फान 35 ई.सी. के 0.1% घोल का छिड़काव करना चाहिए।

हेयरी कैटरपिलरः इसकी लार्वी पत्तियों को नुकसान पहुंचाती है। इसके नियंत्रण के लिए इंडोसल्फान 35 ई.सी. के 0.1% घोल का छिड़काव करना चाहिए।

कटाईः फसल पकने के समय, पौधों की पत्तियाँ पीले रंग की एवं सूखी हुई दिखाई देती है। फसल पकने के समय दाने गहरे काले रंग के हो जाते हैं। सामान्यतः बाजरे की फसल 75–85 दिन के अन्दर पक जाती है। बाजरे की बालियाँ पहले काट ली जाती है उसके बाद स्ट्रॉ को काटकर सुखा लेते हैं।

उपज एवं भण्डारण– फसल की बालियों को मड़ाई से पूर्व अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बालियों से दाने अलग करने के लिए थ्रेशर का प्रयोग किया जा सकता है या बालियों को डण्डों से पीटकर दानों को अलग कर सकते हैं। इसके बाद दानों को साफ कर एवं सुखा कर उनका भण्डारण किया जाता है। किस्म के अनुसार बाजरे की औसत उपज 20–35 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है। बाजरे के भण्डारण के समय दानों में नमी की मात्रा 12–14 प्रतिशत होनी चाहिए। भण्डारण के लिए लकड़ी या मेंटल बिन प्रयोग की जा सकती है।

टिकाऊ फसल उत्पादन का आधार मृदा स्वास्थ्य कार्ड

सुक्रमपाल सिंह, दिव्य जोशी एवं रणबीर सिंह
क्षेत्रीय मृदा परीक्षण प्रयोगशाला, श्रीनगर, गढ़वाल एवं फोसू,
आई.ए.आर.आई. नई दिल्ली–12

देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है इनमें से 58 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह से कृषि पर निर्भर है किसान की आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की रीढ़ मृदा, जल और हवा है भूमि

किसानों के लिए अनाज रुपी सोना उगलती है हमारा पहला कर्त्तव्य है कि हमें धरती माँ के शील की रक्षा करनी चाहिए। देश की तीव्र गति से बढ़ती आबादी, शहरीकरण और औद्योगिकरण के भूमि अधिग्रहण के चलते उपजाऊ कृषि भूमि का विस्तार तो संभव नहीं है, इसलिए प्रति इकाई क्षेत्र से प्रति इकाई समय में फसल उत्पादन के लागत साधनों जैसे बीज, उर्वरक, सिंचाई जल, शाकनाशी, कीटनाशी एवं कवकनाशी का सफलतम उपयोग करना होगा, जिसके लिए बुवाई पूर्व मृदा परीक्षण कराकर उसके गुणों के आधार पर फसलोंत्पादन करना होगा। अगर हम मृदा के ही दृष्टिकोण से देखे तो उसका दोहन निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के सुधार और संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया, जिससे कृषि उत्पादकता तथा लाभदायकता को बढ़ाया जा सके, इस क्रम में मृदा परीक्षण नामक एक मोबाइल मिनी प्रयोगशाला विकसित की गई, जो मृदा स्वास्थ्य का आकलन करने में सक्षम है तथा इसका इस्तेमाल मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनाने में किया जा सकता है।

सभी किसानों के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड नामक नई स्कीम का 19 फरवरी 2015 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा बिकानेर के निकट श्रीगंगानगर के सूरतगढ़ (राजस्थान) से मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का शुभारंभ किया गया। इस महत्वपूर्ण योजना का उद्देश्य देश भर में कृषि क्षेत्र में मिट्टी की सेहत पर ध्यान देकर मिट्टी को आवश्यक पोषण उपलब्ध कराना है ताकि कृषि उत्पादकता में अभिवृद्धि की जा सके। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के शुभारंभ के अवसर पर **'स्वस्थ धरा, खेत हरा'** का नारा दिया गया। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के तहत देश के प्रत्येक किसान को कृषि भूमि की मिट्टी की जाँच हेतु कार्ड उपलब्ध कराए जाएगें जा रहें है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड न सिफ मिट्टी की उत्पादकता से जुड़ी जानकारियां देते है बल्कि यह भूमि में उर्वरक के समुचित उपयोग संबंधी सलाह भी उपलब्ध कराते है। उल्लेखनीय है कि देश के अधिकांष क्षेत्रों में मृदा स्वास्थ्य और उर्वरकों के संबंध में पर्याप्त जानकारी के अभाव में किसान अक्सर नत्रजन का अधिक प्रयोग करते है जो न सिर्फ कृषि उत्पादन एवं उत्पादों की गुणवत्ता के लिए खतरनाक है बल्कि इससे भूमिगत जल में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ने से कई पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न होती है, अतः किसानों

को उनकी भूमि की मृदा स्वास्थ्य और उसके पोषण हेतु उर्वरको के अनुकूलतम उपयोग के सन्दर्भ में जानकारी आवश्यक है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड क्यों जरूरी है?

सामान्यतः कृषक अधिक अनाज प्राप्त करना चाहते है, आत्म निर्भर रहना चाहता है, अधिकतर कृषकों की आजीविका खेती पर ही निर्भर है।

अधिक अन्न प्राप्त करने के लिए मृदा की उर्वरता शक्ति का सन्तुलन होना आवश्यक है। उर्वरता की सन्तुलता बनाये रखने के लिए पोषक तत्वों का सन्तुलन होना आवश्यक है। मृदा की जॉचोपरान्त पोषक तत्वों का अंकन निम्न, मध्यम, उच्च श्रेणी के रूप में मृदा स्वास्थ्य कार्ड में किया जाता है।

पोषक तत्वों की पूर्ति की गणना कर उर्वरक की मात्रा कि.ग्रा./कुन्तल में आकलन प्रति नाली/प्रति हैक्टर दी जाने हेतु मृदा स्वास्थ्य कार्ड में लिखा जाता है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अन्तर्गत सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे; जिंक, तांबा, गन्धक, मेंगनीज, मेंग्नीशियम, बोरान आदि का अंकन भी मृदा स्वास्थ्य कार्ड में लिखा जाता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए कमी वाले सूक्ष्म तत्व के पूरक से की जाती है इसका अंकन भी मृदा स्वास्थ्य कार्ड में दिया जाता है।

अतः कृषक/किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड निर्गत करना अत्यन्त आवश्यक है।

मृदा संरक्षण एवं मृदा स्वास्थ्य कार्ड

मृदा के सम्बन्ध में मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता बढाने में सोयल मृदा स्वास्थ्य कार्ड की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मृदा को उपजाऊ बनाने के लिए इस समय देश के कई राज्यों में मृदा पहचानों अभियान चलाया जा रहा है जो खेती की लागत कम करने और मृदा को उपजाऊ बनाए रखने के लिहाज से यह अभियान महत्वपूर्ण है। आने वाले समय में खाद्यान्न उत्पादन बढाने के लिए उत्पादन लागत को कम करने तथा उपलब्ध संसाधनों जैसे जैव उर्वरक, सिंचाई जल, कीटनाशी इत्यादि के बेहतर उपयोग को सुनिश्चित करते हुए मृदा उत्पादकता एवं उर्वरता को बनाये रखना नितान्त आवश्यक है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड प्रपत्र

मृदा परीक्षण/मृदा विश्लेषणः

मृदा स्वास्थ्य एव गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए मानव के स्वास्थ्य की भांति ही मृदा का परीक्षण करना आवश्यक होता है तथा परीक्षण केक परिणाम के आधार पर मृदा में आये विकारों का निदान किया जा सकता है। मृदा विश्लेषण में फसल वृद्वि को सहायक करने वाले आवश्यक पादप पोषक तत्वो के आधार पर मृदा की उर्वरता का निर्धारण करने का एक उपयोगी साधन है। मृदा विश्लेषण में विभिन्न निष्कर्षी घोलों का प्रयोग कर मृदा में पोषक तत्वों की स्थिति का निष्कर्षक किया जाता है।

मृदा परीक्षण के उद्देश्यः

1. मृदा में पोषक तत्वो की उपलब्धता एवं उर्वरता का मूल्यांकन/जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
2. फसलों के लिए उर्वरकों की पूर्ति करने के लिए मृदा परीक्षण किया जाता है।
3. समस्याग्रस्त मृदायें जैसे; अम्लीय, क्षारीय आदि को सुधारने के लिए एवं मृदा प्रदुषण के आंकलन के लिए।

मृदा परीक्षण के लिए मृदा नमूने लेने की विधि–सर्वप्रथम सम्पूर्ण खेत का सर्वेक्षण करके उसे विभिन्न भागों में बॉट लें। प्रत्येक भाग में 8–10 निशान लगा लें। मृदा सतह से नमूना लेने के लिए खुर्पी या बर्मे की सहायता से अंग्रेजी के अक्षर वी आकार का गड्डा 6 इंच तक बनायें तथा किनारे

से एक इंच मोटी परत लें। इस प्रकार विभिन्न स्थानों से ली गई मृदा को किसी साफ कपड़े, कागज, पॉलीथीन के ऊपर ढेर बनाकर अच्छी तरह मिलाने के बाद पूरे ढेर में से लगभग आधा किलोग्रा. मृदा लेकर एक साफ थैली में रखकर उस पर नाम, पता, नमूना संख्या तथा पहचान चिन्ह लिखकर थैली में डालकर किसी नजदीकी मृदा प्रयोगशाला में भेज देना चाहिये।

मृदा नमूना प्राप्त कर परीक्षण के लिए तैयार करना–

1. मृदा नमूना मृदा परीक्षण के उद्देश्य पर आधारित प्रक्रिया होती है, जैसे; मृदा उर्वरता व सुधार के लिए उद्यान के लिये।
2. मृदा उर्वरता की दृष्टि से मृदा की ऊपरी सतह से 0–15 से.मी. गहराई तक वी आकार का गड्ढा बनाकर दोनों तरफ से स्लाइस काट कर मृदा का नमूना लेना चाहिए।
3. एक खेत में 10 मीटर की दूरी पर नमूने लेकर एवं एक साफ कपड़े में एकतित्र कर 4 भागों में बॉट लिया जाता है। अब दो आमने–सामने वाले भागों को मिलाकर पुनः मृदा एकतित्र कर यही प्रक्रिया दोहराई जाती है। जब तक की मृदा नमूना का वजन 500 ग्रा. न हो जाये।
4. नमूने को सूखाना, छानना, पीसना, मिलाना, संग्रहण या थैली में भरना, टैगिंग या सूचना पट्टिका लगाना।
5. नमूना प्राप्त करने के लिए टूल्स/सामग्री जैसे मृदा औजार या ट्यूब आंगर, बेलचा या खुरपी व ट्रे–पेपर एवं कपड़े के टैग।
6. नमूना छायादार पेड़ के नीचे जमा खाद के स्थान से गीले स्थान से नमूना नहीं लेना चाहिए।
7. नमूने को सूखाकर तैयार किया जाता है।

मृदा नमूना लेते समय सावधानियां

1. जिन स्थानों की मृदा अम्लीय, लवणीय एवं क्षारीय हो वहॉ विभिन्न गहराईयों से मृदा नमूने लिये जाने चाहिए।
2. मृदा नमूना कम्पोस्ट आदि के ढेर गहरी मृदा या सिंचाई नाली के पास का नहीं होना चाहिए।
3. नमूना लेने वाले खेत पर ताजी खाद, चूना या कोई मृदा सुधारक रसायन तत्काल में नहीं डाला गया हो।
4. फसल की परिपक्वता की स्थिति तक नमूना न लें, अगर जरूरी हो तो पौधों की कतारों के बीच वाले स्थान से नमूना लें।

मृदा नमूना की गहराई

1. मृदा उर्वरता के लिए 0–15 से.मी. गहराई तक।
2. अम्लीय एवं क्षारीय मृदा सुधार के लिए 0–90 से.मी. गहराई तक।
3. बागवानी के लिए 100 से.मी. तक की गहराई के गड्ढे की परतों के रूप में मृदा एकतित्र करें।

मृदा परीक्षण के लिए आवश्यक यंत्र एवं उपकरण

1. **पी.एच. मीटरः** इसके द्वारा मृदा में अम्लीयता एवं क्षारीयता का निर्धारण किया जाता है।
2. **विद्युत चालकता मीटरः** इसके द्वारा मृदा में कुल घुलनशील लवणों के निर्धारण किया जाता है।
3. वर्ण मापक
4. **स्पेक्ट्रो–फोटोमीटरः** इसके द्वारा मृदा तथा पौधों में नत्रजन, फॉस्फोरस एवं सल्फर की मात्रा का निर्धारण किया जाता है।

5 फ्लेम–फोटोमीटरः इसके द्वारा पोटेशियम, सोडियम, कैल्शियम एवं एल.आई. का निर्धारण किया जाता है।

6. ए.ए.एस. (Atomic Absorption Spectophotometer):- उपकरण द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों का निर्धारण किया जाता है।

मृदा नमूना परीक्षण की विधियां

1. मृदा परीक्षण किट द्वारा 2. स्थिर प्रयोगशाला द्वारा

3. मोबाइल मृदा प्रयोगशाला द्वारा।

मृदा परीक्षण का महत्व या लाभ

मृदा परीक्षण से पोषक तत्वों की जानकारी प्राप्त होती है, अम्लीय एवं क्षारीय तथा क्रान्ति सीमाओं का पता चलता है।

आज खेती को परम्परागत खेती से बाहर लाकर आधुनिक खेती की ओर ले जाने की आवश्यकता हे जिसके लिए खेतों की मृदा का मृदा परीक्षण कराकर कम लागत में अधिक फसलोंत्पादन एवं लाभ कमाया जा सकता है, बस जरूरत है थोड़ी सी सावधानी बरतने की और लगन के साथ तकनीक सीखने की।

गन्ने के उत्पाद एवं मूल्यसंवर्धन

राजीव रंजन राय, मिथिलेश तिवारी एवं प्रियंका सिंह
भा.कृ.अ.प.–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सम्पूर्ण विश्व में गन्ना एक बहुउत्पाद फसल के रूप में जाना जाता है। लगभग 75 प्रतिशत मिठास की आपूर्ति गन्ने से होती है। भारतवर्ष में गन्ने की खेती लगभग 5.08 मिलियन हेक्टेयर में की जाती है। हमारे देश में लगभग 357.6 मिलियन टन गन्ने का वार्षिक उत्पादन है। गन्ना एक ऐसी फसल है जिसका कई तरह का उत्पाद बनता है।

गन्ने के उत्पाद

- गन्ने का जूस, गुड, चीनी, शीरा, सिरका, खोई, खोई की राख, प्रेसमड।

गन्ने का जूसः गन्ने के ताजा 100 मि.ली. जूस में 2 मि. ली. अदरक एवं 2 मि.ली. नीबू, 0.5 ग्राम नमक का सही अनुपात में उपयोग करके मध्य जनवरी से मई माह तक इसको उपयोग में लाया जा सकता है।

गन्ने का जूस

गन्ने के रस का परिरक्षण निम्नलिखित चरणों में किया जाता है

- गन्ने की पेराई
- रस छानना
- आंशिक निर्जीवीकरण (Pasturization)
- परिरक्षक डालना (Preservative) सोडियम बेन्जाइट @ 125 पी.पी.एम.
- बॉटलिंग (Botlling)

इस तरह से बॉटलिंग करके हम गन्ने के रस को छः महीने तक रख सकते है।

गन्ने का गुड़ः भारत में गन्ने के उत्पादन का 16 प्रतिशत गुड़ उद्योग में जाता है। गुड़ अत्यंत पोषक खाद्य पदार्थ है जिसमें 72–78 प्रतिशत सुक्रोज, 5–7 प्रतिशत ग्लूकोज, 5–7 प्रतिशत फ्रक्टोज एवं लगभग 20 प्रतिशत नमी पायी जाती है। सुक्रोज के साथ–साथ लवण व विटामिनों का प्रचुर श्रोत होने के कारण गुड़ चीनी से बहुत अधिक लाभकारी होता है। गुड़ अपने में निहित पौष्टिक गुणों के कारण भारत में ही नही, अपितु पूरे विश्व में बहुत लोकप्रिय है। गुड़ उद्योग इस तरह का उद्योग है कि किसान को चीनी मिल या किसी विचौलिया के ऊपर निर्भर रहने की आवश्यकता नही होती है। अक्टूबर नवम्बर में पेड़ी फसल से गुड़ बनाया जा सकता है तथा दिसम्बर से मुख्य फसल से गुड़ बनाया जा सकता है तथा यह अप्रैल–मई तक यदि तापमान सामान्य रहा (35–38°c तक) तो गुड़ उत्पादन किया जा सकता है।

गुड

गुड़ का रासायनिक विश्लेशण मात्रा/100 ग्राम

तत्व	मात्रा
सुक्रोज	60–85
प्रवसन शक्करा	5–15

प्रोटीन	0.4
वसा	0.1
कैल्शियम मि. ग्रा.	80
लोहा मि. ग्रा.	11.0
फॉस्फोरस मि. ग्रा.	4.0
कुल मिनिरल ग्रा.	0.6–1.0
नमी, ग्रा.	3–10
ऊर्जा, कि. कैलोरी	383

गुड़ अपने आप में एक औषधि है इसको और पौष्टिक बनाने के लिए आँवला 75ग्रा0/कि0ग्रा0, हल्दी 12ग्रा0/कि0ग्रा0, अजवाइन 15ग्राम/कि0ग्रा0, हींग 1ग्राम/कि0ग्रा0, सोंठ 30 ग्रा0/कि0 ग्रा0 से मूल्य संवर्धन किया जा सकता है। आँवला के मिलाने से विटामिन सी की मात्रा बढ़ जाती है। हल्दी मिलाने से प्रतिरोधक क्षमता की वजह से दर्द तथा चोट में राहत देता है। अजवाइन एवं हींग मिलाने से पेट सम्बन्धी विकार दूर होता है। सोठ मिलाने से ठंडी में सर्दी जुकाम से राहत मिलती है।

मूल्यवर्धित गुड़

चीनीः भारतवर्ष में गन्ना उत्पाादन का 60% से ज्यादा खपत चीनी उत्पादन में होता है। 2019 में भारत में चीनी उत्पादन 232 मिलियन टन रहा है, जिसमें उत्तर प्रदेश सबसे आगे रहा है। पूरे भारत में 732 चीनी मिल हैं जो लगातार गन्ना पेराई का कार्य कर रही है तथा किसान के हितो का ध्यान रखती हैं। चीनी मिल के पास पूरे गन्ना के सहउत्पाद का उपयोग करने की व्यवस्था होती है जिससे गन्ने का पूर्णतः उपयोग हो जाता है तथा किसान को सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य प्राप्त हो जाता है।

चीनी

शीरा एवं उसके उत्पादः गन्ने की पेराई क्षमता पर शीरा की उपलब्धता निर्भर करती है। शीरे में 30–35 प्रतिशत सुक्रोज व 15–20 प्रतिशत ग्लूकोज एवं फ्रुक्टोज होता है। भारत में गन्ने के शीरे का उपयोग मुख्यतः इथाइल अल्कोहल बनाने के काम में आता है इसके अलावा शीरे से कई प्रकार के रसायन कार्बानिक अम्ल इत्यादि बनाए जा सकते हैं। शीरा से अल्कोहल, ऐसीटोन, कुटानोल, एसिटिक एसिड, साइट्रिक एसिड, लेवटिक एसिड, फूड एवं फीड यीस्ट इत्यादि शीरे से बनाया जाता है।

इथाइल एल्कोहलः इथेनाल आने वाले समय में पारंपरिक ऊर्जा का मुख्य श्रोत हो सकता है। अनुसंधान से यह सिद्व हो चुका है कि पेट्रोल, डीजल में इथेनाल का प्रयोग करके काफी हद तक प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है। इस तरफ सरकार का सार्थक प्रयास चल रहा है जिससे विदेशी मुद्रा की बचत होगी तथा वातावरण प्रदूषण मुक्त होगा। एवं गन्ना किसान की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी।

सिरकाः गन्ने के जूस को मार्च के तीसरे सप्ताह से लेकर जून मध्य तक मिट्टी के घड़े में रखकर मुँह को कपड़े इत्यादि से बांधकर खुले स्थान में खोई या गन्ने की पत्ती से ढक देते हैं जो कि यदि तापमान 38–43°c के बीच 25–30 दिन रहता है तो सिरका तैयार हो जाता है। उस समय पी एच मान 2.4 के आस–पास रहता है।यह विधि बिलकुल सरल एवं परम्परागत है इसको कोई भी कर सकता है तथा अच्छा लाभ प्राप्त कर सकता है।

सिरका

खोई से बनने वाले उत्पादः गन्ने के पेराई के दौरान निकली हुई, ताजी खोई में मुख्यतः 46 प्रतिशत रेशा एवं 45–50 प्रतिशत पानी होता है। खोई का प्रयोग पारम्परिक रूप से ऊर्जा उत्पादन में होता है। खोई में मुख्यतः सैल्यलोंज, सिलिका, लोहा, ऑक्साइड पोटाश एवं चूना होता है। सैल्यलोंज की मात्रा अधिक होने के कारण इसकी पानी सोखने की क्षमता अधिक होती है। इसलिए इसका उपयोग मल्च या भूमि में पानी के संरक्षण खरपतवार नियन्त्रण के लिए उपयुक्त पाया गया है।

खोई

खोई के अन्य उपयोगः 1. कागज उद्योग 2. खोई एवं गन्ने 3. विद्युत ऊर्जा इत्यादि। खोई की राख–यदि 2500 टन प्रतिदिन गन्ना पेराई मिल में होती है तो लगभग 7.5 टन खोई की राख निकलती है। इस राख में मुख्यतः सिलिका (85–90 प्रतिशत) एवं पोटाश (5–10 प्रतिशत) होता है। इसका इस्तेमाल कांच उद्योग एवं खेतों में खाद के रूप में किया जाता है।

पशु आहार के रूप में उपयोगः खोई में प्रोटीन की मात्रा 9.3 प्रतिशत होती है। खोई को 10–30 प्रतिशत भाग अन्य हरे चारे या दलहनी फसलों के साथ मिलाया जाए तो जानवरों की सेहत के लिए फायदेमंद होता है। खोई एवं शीरे पर आधारित जानवरों के आहार वैगोमोलासेस का प्रयोग मुख्य रूप से ब्राजील, क्यूबा एवं अमेंरिका में होता है।

खोई की राख

प्रेसमडः गन्ने का सहउत्पाद काले भूरे रंग का होता है। चीनी मिल में यह सह–उत्पाद निकलता है यदि प्रतिदिन 2500 टन गन्ना पेराई क्षमता वाली मिल है तो 10–15 टन लगभग प्रेसमड बनता है। इसमें मुख्यतः मोम, रेशा, प्रोटीन, राख इत्यादि होते है। इसका प्रयोग खाद (फॉस्फेट, कैल्शियम) मोम, बायो गैस भवन निर्माण इत्यादि में किया जाता है।

उपरोक्त गन्ना उत्पाद में मूल्यसंर्वधन बताए गए तरीके के हिसाब आने वाले समय में गन्ना किसानों को अधिक से अधिक लाभ हो सकता है। सरकार के द्वारा यह सार्थक प्रयास चल रहा है जिससे मिल के अलावा गुड़ एवं खाण्डसारी लगाने हेतु मिल एवं गुड इकाई के बीच की दूर को भी कम (8 कि.मी.) कर दिया गया जिससे किसानों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त होगा तथा सरकार की अच्छी निति के अनुसार पेट्रोल एवं डीजल इथनोल का प्रयोग करके काफी हद तक प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है एवं चीनी उद्योग के अतिरिक्त गन्ना का उपयोग होने से गन्ना किसान की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। यह विधि (गन्ना उत्पादन मूल्यसंर्वधन) किसानों को चीनी मिल की निर्भरता से हटकर आत्मनिर्भर बनाएगी एवं अपने उत्पाद का किसान स्वयं मूल्य निर्धारण कर सकते है।

नये बागों की स्थापना की तकनिकी

जय प्रकाश एवं कन्हैया सिंह
फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

भारतवर्ष में सामान्यतः सभी प्रकार के शीतोष्ण, समशीतोष्ण एवं उष्ण–कटिबंधीय फलों की बागवानी की जाती है, क्योंकि हमारे देश में लगभग हर प्रकार की जलवायु पायी जाती है। परन्तु भारत फिर भी फल उत्पादन में द्वितीय स्थान पर है। हमारे देश में सभी संसाधन उपलब्ध होने के बावजूद भी फलों की उत्पादकता अन्य फल पैदा करने वाले देशों की तुलना में काफी कम है। फलदार वृक्षों की बागवानी सफलतापूर्वक करने हेतु संबंधित ज्ञान के साथ–साथ निपुणता एवं लगन की भी आवश्यकता होती है। बागवानी एक लम्बे समय का निवेश है और सुदृढ़ योजना बनाकर ही बागवानी व्यवसाय शुरू करना चाहिए। शुरूआती दिनों में किए गए गलत निर्णयों का दुश्प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है। चूंकि फलवृक्ष दीर्घकालीन होते हैं अतः बाग लगाने की योजना बनाने के पहले निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. स्थान का चुनाव।
2. मृदा एवं जलवायु को ध्यान में रखकर फल विशेष एवं किस्मों का चुनाव।
3. जल की उपलब्धि एवं गुणवत्ता।
4. कम उपजाऊ तथा खराब मृदा है तो मिट्टी की दशा सुधारना।
5. वायुरोधी वृक्षों का चुनाव एवं रोपण।
6. जानवरों से बचाव का उपाय।
7. उद्यान के अन्दर भवन, रास्ते, सिंचाई एवं जल प्रबंधन के स्रोत इत्यादि बनाना।
8. फलवृक्षों का रेखांकन करना।

स्थान का चुनाव

जहाँ तक संभव हो नए बाग ऐसे क्षेत्र में लगाना चाहिए जहाँ पर फलवृक्षों की बागवानी पहले से ही की जाती रही हो। ऐसे क्षेत्रों में बागवानी संबंधित जानकारी तथा आवश्यक चीजों की उपलब्धता आसान होती है। साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखे कि बाग बाजार एवं प्रसंस्करण यूनिटों के नजदीक हो और समय से फल बाजार एवं प्रसंस्करण यूनिटों में भेजे जा सकें जिससे कटाई उपरांत नुकसान कम से कम हो।

जलवायु एवं मृदा

जिस क्षेत्र में बाग लगाने की योजना बनी हो वहां की भूमि एवं जलवायु का फलदार वृक्षों के चयन में महत्व होता है। कुछ फल केवल शीतोष्ण जलवायु में अच्छे पनपते हैं और कुछ उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में अच्छी फलत देते हैं। जलवायु के अनुसार फलवृक्षों का वर्गीकरण सारणी–1 में निम्न है। ध्यान रखें कि ऐसे स्थान जहाँ पाला जाड़े के महीनों में पड़ता हो पपीते की खेती लाभकारी नहीं होती है।

जलवायु	फलदार वृक्ष
शीतोष्ण	सेब, नाशपाती, खुबानी, चेरी, आलूबुखारा, आड़ू, अंगूर, स्ट्राबेरी इत्यादि।
उष्ण एवं उपोष्ण	अनानास, केला, संतरा, मौसम्बी, ग्रेपफ्रूट, चकोतरा, नींबू, आम, अंगूर, अनार, पपीता, लोकाट, शरीफा, अमरूद, लीची, चीकू, बेर, कटहल, बेल, इत्यादि।

भूमि का चयन भी बागवानी में महत्वपूर्ण होता है। जहाँ तक संभव हो गहरी दोमट जीवांशयुक्त मिट्टी जिसका पी. एच. मान 5.5–7.5 के बीच हो और जल भराव की समस्या न हो बागवानी हेतु सर्वोत्तम मानी जाती है। इसके साथ–साथ भूमि में लवण की अधिकता होने पर भी पौधों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लवणीय एवं क्षारीय भूमि में सभी फलवृक्ष नहीं लगाएं जा सकते, परन्तु बेर, अमरूद, आंवला, बेल, फालसा आदि फलवृक्ष लवण सहनशील होते हैं। इस तथ्य की संस्तुति की जाती है कि नए बाग लगाने से पहले मिट्टी की जांच अवश्य करा लेनी चाहिए।

सिंचाई की सुविधा एवं जल गुणवत्ता

नया बाग लगाने से पहले सिंचाई के स्रोतों पर विचार कर लेना चाहिए। इसके साथ–साथ जल की गुणवत्ता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्षारीय अथवा लवणयुक्त जल फलवृक्षों के विकास एवं उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। बाग लगाने से पहले सिंचाई स्रोतों के जल की जांच अवश्य करा लेनी चाहिए। जल की विद्युत चालकता यदि 1.5 ds/m से कम है तो वह फलदार वृक्षों के लिए उपयुक्त होता है। परन्तु विद्युत चालकता अधिक होने से (>2-0 ds/m) पौधों पर दुष्प्रभाव पड़ता है। आजकल ड्रिप सिंचाई पद्धित का प्रयोग बागवानी फसलों में होने लगा है। इस सिंचाई प्रणाली को अपनाने से जल की बचत होती है साथ ही साथ पौधों का विकास एवं उत्पादकता भी बढ़ती है।

फलदार वृक्षों की किस्मों का चुनाव

नये बाग लगाने से पहले इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि किस विशेष फलवृक्ष की बागवानी करनी है तथा उस फल विशेष की कौन–कौन सी किस्में उस जलवायु हेतु अच्छी है। अच्छी किस्मों का चुनाव करके हम बागबानी में अच्छा उत्पादन ले सकते है हमेशा ऐसी ही किस्मों का चुनाव करना चाहिए जिसका उत्पादन अधिक हो और अपने क्षेत्र के बाजार में उन किस्मों को बेचने में कोई परेशानी ना हो पौधें हमेशा अच्छी नर्सरी से या सरकारी नर्सरी से ही खरीदना चहिये जिससे अच्छी क्वालिटी के पौधें हमें मिले।

कुछ फलदार वृक्षों में अच्छी एवं नवीन किस्मों का विवरण नीचे सारणी–2 में दिया गया है।

फल	किस्म
आम	दशहरी, लगड़ा, चौसा, बाम्बेग्रीन, रतौल, गौरजीत, आम्रपाली, मल्लिका, पूसा अरूणिमा, पूसा सूर्या, पूसा प्रतिभा, पूसा श्रेष्ठ पूसा पीतांबर, पूसा लालिमा, रामकेला (अचार के लिए), अम्बिका, अरुणिका।
अंगूर	पूसा उर्वशी, पूसा नवरंग, परलेट, पूसा सीडलेस, पूसा अदिति, पूसा स्वर्णिका, फ्लेम सीडलेस।
अमरूद	इलाहाबाद सफेदा, लखनऊ–49, ललित, श्वेता, पन्त प्रभात, अर्का अमूल्य, अर्का मृदला, इलाहाबाद सुर्ख, हिसार सफेदा, हिसार सुरखा
पपीता	अर्का प्रभात, पूसा ड्रवार्फ, पूसा नन्हा, अर्का सूर्या, रेड लेडी, सिन्टा, पूसा डेलेसियस
बेर	बनारसी कड़ाका, उमरान, गोला।
आंवला	नरेन्द्र आंवला, कृष्णा, कंचन।
नींबू (लेमन)	पन्त लेमन, कागजी कलां,
एसिड लाइम (कागजी नींबू)	प्रमालिनी, विक्रम, सांई शरबतीए पूसा उदित, पूसा अभिनव
मीठी नारंगी	पूसा राउंड और पूसा शरद, मौसम्बी, जाफा

रेखांकन

फलदार वृक्षों को अच्छी तरह विकसित करने के लिए रेखांकन करना नितांत आवश्यक है। सही तरह से रेखांकन करने से बाग में कृषि क्रियाएं अच्छी तरह से की जा सकेगी और पौधों को पर्याप्त सूर्य की रोशनी भी मिलती रहेगी।

रेखांकन विधियां

(क) आयताकार विधिः रेखांकन की इस विधि में पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी, पौधों से पौधों के बीच की दूरी की अपेक्षा अधिक रखते हैं।

(ख) वर्गाकार विधिः यह विधि फलदार वृक्षों के रेखांकन हेतु सर्वाधिक अपनाई जाती है। इस विधि में पौधों का रोपण वर्ग के चारों कोनों पर करते हैं। पौधों एवं पंक्तियों की बीच की दूरी समान होती है। यह अत्यन्त सरल रेखांकन विधि है जिसमें कृषि क्रियाएं एवं सिंचाई इत्यादि सुलभ तरीके से किया जा सकता है।

(ग) पूरक विधिः यह विधि वर्गाकार रेखांकन विधि की तरह ही है अन्तर केवल इतना है कि वर्ग के केन्द्र में एक अतिरिक्त पौधा लगाया जाता है।

(घ) बाड़ पंक्ति विधिः यह विधि अपेक्षाकृत नई रेखांकन विधि है। इस विधि में पौधें से पौधों के बीच की दूरी, पंक्तियों के बीच की दूरी की अपेक्षा आधी अथवा एक तिहाई रखी जाती है। पौधों के बीच की दूरी अत्यन्त कम होने से पौधें बाड़ की तरह प्रतीत होते है। साथ ही साथ पंक्तियों के बीच की दूरी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

वृक्षारोपण

बाग लगाने से पहले खेत को गहरा जोतकर समतल कर लेना चाहिए। इसके बाद जितनी दूरी पर पौध लगानी है उतनी दूरी पर 1 x 1 x 1 मीटर के गड्ढ़े मई–जून माह

में खोद लेना चाहिए। गड्ढ़ों से निकली मिट्टी में लगभग 50 किग्रा. अच्छी तरह से सड़ी गोबर की खाद मिला देना। इन गड्ढ़ों को पौध लगाने के 15–20 दिन पूर्व गोबर मिली मिट्टी से भर दिया जाता है। दीमक की समस्या हो तो 100 ग्राम क्लोरपायरीफॉस प्रति गड्ढ़े की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। गड्ढ़े भरते समय मिट्टी को अच्छी तरह दबाते हैं और सतह से 15–20 सेमी. ऊपर तक भरते हैं। यदि गड्ढ़ा भरने के बाद वर्षा न हो तो एक सिंचाई कर देते हैं जिससे गड्ढ़ों की मिट्टी बैठ जाए। पौधों को लगाने के लिए पूरे देश में वर्षा ऋतु सबसे उपयुक्त मानी गई है क्योंकि इन दिनों वातावरण में पर्याप्त नमी होती है। ऐसे क्षेत्र जहाँ पर वर्षा अधिक होती है पौध लगाने का कार्य वर्षा के अन्त में जहाँ वर्षा कम होती है वहां वर्षाकाल के प्रारम्भ में करना चाहिए। जिससे पौधें अच्छी तरह स्थापित हो सकें। पेड़ लगाने का सबसे अच्छा समय सायंकाल होता है। दिन की गर्मी में पौधें मुरझा जाते हैं। यदि आसमान बादलों से ढ़का है तो दिन के समय भी पौधें लगाए जा सकते हैं।

पौध रोपण के पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधें कहां से एवं किस प्रकार के लिए जाएं। नर्सरी में पौधें कलम या चश्मा प्रवर्धन प्रक्रिया के बाद कम से कम 9 महीने तक रखे हों। उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु के पौधें साधारणतः मानसून में (जुलाई–अगस्त) में लगाएं जाते हैं। जबकि पर्णपत्ती पहाड़ी फलदार पौधों को शीतऋतु (जनवरी) में लगाना चाहिए। पौध रोपण के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. पौध लगाने के ठीक पहले लिपटी हुई घास एवं टाट अथवा पॉलीथीन को मिट्टी की पिण्डी से अलग कर देना चाहिए।
2. गड्ढे के केन्द्र से केवल उतनी ही मिट्टी निकालनी चाहिए जिसमें मिट्टी की पिण्डी के साथ पौधें की जड़ सरलतापूर्वक बैठ जाए।
3. पौध लगाने के बाद मिट्टी को चारों तरफ से जड़ों के आसपास दबा देना चाहिए। ध्यान रखें कि पौधा जमीन तह से नीचे न बैठ जाएं।
4. पौध रोपण के तुरन्त बाद पौधों को पानी देना अति आवश्यक होता है।
5. शुरूआती दिनों में पौधों को किसी लकड़ी का सहारा देना ठीक होता है।

पौधों के बीच की दूरी किस्मों, भूमि के उपजाऊपन तथा वातावरण पर निर्भर करती है। जो किस्में अधिक फैलने वाली होती है उनके लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर आम की ओजस्वी किस्मों जैसे लंगड़ा एवं चौसा को 10 x 10 मीटर पर लगाना ठीक रहता है। पूसा प्रतिभा जैसी अर्धबौनी किस्मों को 6 x 6 मीटर की दूरी पर लगाई जा सकती है और आम्रपाली जैसी बौनी किस्म को 2–5 x 2–5 मीटर की दूरी पर भी लगाया जा सकता है उचित सधाई एवं काट छांट को अपनाते है। बाग लगाने के लिए पौधशाला से लाए जाने वाले पौधों को मिट्टी समेत चारों ओर से अच्छी तरह खोदकर निकालना चाहिए जिससे जड़ों को कम से कम नुकसान पहुंचे। पौधों को पूर्व चिन्हित गड्ढ़ों के बीचों बीच पिण्डी के बराबर गड्ढ़ा खोदकर उसमें रोपित कर देना चाहिए तथा आसपास की मिट्टी को अच्छी तरह दबा देना चाहिए। पौध लगाने के बाद उसके चारों ओर सिंचाई के लिए 60 सेमी. व्यास का थाला बना देना चाहिए। वर्गाकार विधि एक अच्छी रोपण विधि है जिसमें सिंचाई एवं अन्य कृषि क्रियाएं आसानी से की जा सकती है।

वायुरोधक वृक्षों का प्रबंधन

गर्म एवं सर्द तेज हवा चलने से पौधों को नुकसान पहुंचता है। साथ ही साथ सामान्य वातावरण में भी तेज हवा चलने से फल गिर जाते हैं और शाखाएं टूट सकती है। गर्म हवाएं हमेशा पश्चिम दिशा से और सर्द और ठंढी हवाएं उत्तर दिशा की और से ही आती है जिसके लिए उत्तर और पश्चिम दिशा में ऊंचे और अधिक बढ़ने वाले पोधो की पंक्ति लगा देनी चाहिए जिससे हम अपने बाग की सुरक्षा पाले और लू से बचा सकते है इससे बचाव हेतु वायुरोधक वृक्षों का रोपण अति आवश्यक होता है। इसके लिए जामुन, कमरख, कैस्यूरीना आदि के पेड़ अच्छे पाएं गए हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

एक आदर्श बाग की स्थापना में पोषक प्रबंधन का बड़ा महत्व होता है। पौधों की बढ़वार के लिए पोषक तत्वों की

आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व आमतौर पर पौधों को मिट्टी से प्राप्त होते हैं। इसलिए पौधों की समुचित विकास के लिए सभी पोषक तत्वों का मिट्टी में होना आवश्यक है। फलवृक्ष लगाने के पहले यह आवश्यक है कि मिट्टी का पी.एच. मान, कार्बनिक पदार्थ तथा उपलब्ध पोषक तत्वों का स्तर जानने के लिए उसकी जांच करायी जााए। पी. एच. मान जानना इसलिए और भी जरूरी है क्योंकि पोषक तत्वों की घुलनशीलता एवं उपलब्धता इससे बहुत अधिक प्रभावित होती है। अधिकांश फलदार वृक्षों के लिए 6.5–7.5 पी.एच. मान अच्छा पाया गया है।

खाद एवं उर्वरकों के डालने का समय इस बात पर निर्भर करता है कि फलवृक्षों को किस पोषक तत्व की आवश्यकता किस समय होती है। अधिकांश फलवृक्षों की खुराक खीचने वाली जड़े तल के पास (15 सेमी. से 60 सेमी. गहराई) तथा पेड़ों के फैलाव की परिधि के अन्दर होती है। अतः खाद एवं उर्वरक वृक्षों के इसी घेरे एवं गहराई में उपलब्ध होना चाहिए।

पेड़ों की सधाई एवं काट छांट

फलवृक्षों को साधने का मुख्य उद्देश्य यह है कि एक मजबूत ढ़ांचा तैयार हो जाए और शाखाएं तरीके से सही स्थान से निकलें। ऐसा होने पर भविष्य में कृषि क्रियाएं ढ़ंग से की जा सकती है और बागों का प्रबंधन सुलभ हो जाता है। फलदार वृक्षों में काट छांट पौधों की वृद्धि एवं फलत में एक सामंजस्य लाने के लिए की जाती है। साथ ही साथ उचित सधाई एवं काट छांट करने से पौधों को सूर्य का प्रकाश समुचित रूप से मिलता है और पौधों की बढ़वार एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है।

खरीफ के मौसम में उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जियों के उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकियां

हर्षवर्धन चौधरी, आर.के. यादव एवं भोपाल सिंह तोमर
शाकीय विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अ.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली – 110012

आजकल कोविड–19 की महामारी के समय में सभी लोग अपने शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करना चाहते हैं तथा इसमें सब्जी फसलों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। सब्जी फसलों में अनेक प्रकार के विटामिन खनिज लवण एंटी ऑक्सीडेंट तथा स्वास्थ्य वर्धक रसायन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ताजी और बिना पकाई हुई हरी सब्जियां जैसे टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, बंद गोभी, हीरा, मूली आदि जो सामान्यतः सलाद के रूप में प्रयोग की जाती है जिससे शरीर में विटामिन तथा रेशे की उपलब्धता में वृद्धि होती है मोटापे को नियंत्रित रखने में कम कैलोरी युक्त कद्दूवर्गीय सब्जियां महत्वपूर्ण हैं जिसमें 90% से अधिक जल होता है

सब्जियों का महत्वः

आजकल जब सभी लोग शाकाहारी भोजन की तरफ जा रहे हैं ऐसे में सब्जियों का महत्व निम्नलिखित कारणों से बढता ही जा रहा है।

1. संतुलित आहार के लिये सब्जियां आवश्यक।
2. सब्जियां पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण एवं सस्ता स्रोत।
3. सब्जियां खाद सुरक्षा के साथ पोषण सुरक्षा भी प्रदान करती है।
4. सब्जियों में एंटी आक्सीडेंट की प्रचुर मात्रा।
5. विभिन्न प्रकार के रंग, आकार, एवं महक के कारण भोजन को जायकेदार बनाती है।
6. कम जमीन से कम समय में अधिक आय का साधन।
7. हर प्रकार के मौसम एवं कृषि चक्र/पद्वति में समावेश।
8. निर्यात एवं प्रसंस्करण की संभावना।
9. सब्जियों का पौध एवं बीज उत्पादन एक लाभप्रद व्यवसाय।

सब्जियों के पौध उत्पादन की प्रौद्योगिकी

सब्जी पौधें बहुत सारी बीमारियों मुख्यतः बिषाणु जनित बीमारियों के प्रति संवेदनशील होती है। क्योंकि यह पौधें नाजुक, रसभरे तथा बहुत ही नर्म कोमल होते हैं जिनमें विषाणु वाहक कीट जल्दी विषाणुओं को प्रसारित कर देते है। दूसरी तरफ उच्च गुणवक्ता वाले सब्जी संकर किस्मों के बीज काफी महगें होते है। अतः यह अति आवश्यक हो जाता है कि सब्जी बीज उत्पादक, सब्जी पौध को संरक्षित अवस्था में उगाये ताकि हर एक बहुमूल्य बीज से स्वस्थ बीमारी रहित पौधा प्राप्त हो क्योंकि वह बीज मुक्त परागित प्रजातियों की अपेक्षा 25–50 गुना अधिक मूल्य में प्राप्त होता है। अधिकांश सब्जियों की नर्सरी में पौध उगाकर रोपाई की जाती है परन्तु कुछ सब्जियों को सीधे खेत में बुवाई भी की जाती है। नर्सरी का स्थान ऐसा होना चहिए जहाँ पर प्रकाश और जल निकास की उचित व्यवस्था हो। नर्सरी के लिए लगभग 20 सेमी0 उँची एवं 1 मीटर चौडी क्यारियां बना लेते है। दो क्यारियों के बीच 30 से 40 सेमी0 जगह छोड़ देते है जहाँ से नर्सरी में पौधो की निराई गुड़ाई व अन्य सस्य क्रियाए करते है। यदि सम्भव हो तो नर्सरी को 40 मेंस नाइलोन के जालघर में तैयार करनी चाहिए इससे पौध की कीटों से रोकथाम हो जाती है। नर्सरी में बीज बुवाई से पहले सड़ी हुई गोबर की खाद 5 क्रिगा0 प्रति वर्ग मीटर की दर से अच्छी तरह से मिट्टी में मिला देते है। इसके बाद फार्म एल्डिहाइड 25 मिली0 प्रति ली0 पानी में घोल बनाकर जमीन को अच्छी तरह से भीगा देते है। इसके बाद नर्सरी क्षेत्र को पारदर्शी पालीथीन से ढ़क देनी चाहिए। ध्यान रहे कि उसके अन्दर कही से हवा न जा सके। एक सप्ताह बाद पालीथीन हटाकर बेड की अच्छे से गुडाई करे और जब गैस की बदबू आनी बन्द हो जाये तो समतल करके बेड बना ले। बीज को बोने से पहले थीरम 1 ग्राम एवं कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम या कैप्टॉफ 3

ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से उपचारित करले। बुवाई कतारों में करनी चाहिए। यदि सम्भव हो तो नर्सरी मृदा रहित प्रो–ट्रे में उगाये इससे जमाव अच्छा एवं पौधें मजबूत होते है। नर्सरी में पौधों को पूरी बढवार के समय विशेष देख रेख में तैयार किया जाना चाहिए। जब पौध 10–15 सेमी. लम्बी एवं 4–6 पत्तियां पूर्ण रूप से विकसित हो जाऐ तो भली प्रकार से तैयार खेतों में रोपाई करनी चाहिए। पौधों की रोपाई सायःकाल में जब धूप कम हो, करनी चाहिए एवं रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

उन्नतशील प्रजातियाँः

आज देश में लगभग अधिकांश सब्जियों की उन्नतशील एवं संकर किस्में उपलब्ध है इन किस्मों की पैदावार अधिक है एवं इनमें बीमारियों या प्रतिकूल दशाओं से लडने की क्षमता अधिक होती हैं। यदि इन उन्नतशील प्रजातियों का बीज लगाया जाये एवं उचित फसल प्रबन्धन किया जाये तो किसान खेती में आने वाली लागत से कई गुणा लाभ प्राप्त कर सकते है।

खरपतवार नियन्त्रणः अच्छी बढ़वार के लिए प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। खरपतवार सब्जी की फसल से पानी, प्रकाश एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करते हैं तथा कीट व बीमारियों को शरण देते है जिससे फसलों की उपज को 20–80 प्रतिशत तक कम कर देते हैं। ये खरपतवार फसलों में शुरुआती 4–6 सप्ताह तक अधिक नुकसान करते है। पहली दो सिंचाई के बाद हल्की निराई गुडाई करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण के लिए पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी.) 400 मिली की मात्रा प्रति एकड को 200 ली. पानी में बुवाई या रोपाई से पहले छिड़काव करें।

तालिका 1ः खरीफ के मौसम में उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जियों का विवरणः

	उन्नत किस्में	बीज की मात्रा/है.	बीज बोने का समय	रोपाई की दूरी (सेमी.) पंक्तियां x पौधें	पैदावार (कुन्तल/है.)
बैंगन	पूसा उत्तम पूसा श्यामला (लम्बे) पूसा कौशल (लम्बे) पूसा हाइब्रिड – 5 पूसा हाइब्रिड – 9	400–500 ग्राम 150 – 200 ग्रा0 (संकर)	जून – जुलाई	60–75 X 50	300–350
टमाटर	एच – 86 एच – 88	400–500 ग्राम 150 – 200 ग्रा0	अगस्त	50–60 X 50	250–300
मिर्च	पूसा ज्वाला पूसा सदाबहार	800–1000 ग्राम	जून – जुलाई	50 X 50	75–80 110–125
शिमला मिर्च	कैलीफोर्निया वन्डर पूसा दीप्ति (हाइब्रिड)	800–1000 ग्राम	अगस्त	45 X 45	100–125
फूलगोभी	पूसा मेंघना पूसा कार्तिक संकर	600–700 ग्राम	जून – जुलाई	45 X 45	150–200
भिन्डी	पूसा भिन्डी– 5	10–12 किग्रा0	जून–जुलाई	60 X 30	125–150
चौलाई	पूसा लाल चौलाई पूसा किरण	2–3 किग्रा0	जून–जुलाई	30 X 10	300
ग्वार	पूसा नवबहार	12–15 किग्रा0	जून–जुलाई	45 X20	100–120
लोबिया	पूसा सुकोमल काशी कंचन	20–25 किग्रा0	जून–जुलाई	45 X30	80–100
मूली	पूसा चेतकी	8 – 10 किग्रा0	जुलाई–अगस्त	20 X 8	200

तालिका 2: खरीफ के मौसम में उगायी जाने वाली कद्दू वर्गीय सब्जियों का विवरणः

फसल	उन्नत किस्में	बीज की मात्रा/है.	रोपाई की दूरी (सेमी.) पंक्तियां x पौधें	पैदावार (कुन्तल/है.)
लौकी	पूसा नवीन, पूसा संतुष्टि पूसा हाइब्रिड – 3	4–5 किग्रा0	300 X 75	300–350 350–400
करेला	पूसा औषधि, पूसा रसदार पूसा विशेष, पूसा दो मौसमी, पूसा हाइब्रिड – 2	5–6 किग्रा0	180 X 60	150–200 200–250
खीरा	पूसा उदय पूसा बरखा,	1.5–2.0 किग्रा0	150 X 60	120–150
टिण्डा	पूसा रोनक, पजांब टिडां, अर्का टिडां	4–5 किग्रा0	150 X 50	100–150
धारीदार तोरई	पूसा नूतन	5–6 किग्रा0	200 X 60	100–150
चिकनी तोरई	पूसा स्नेहा	5–6 किग्रा0	200 X 60	100–150
सीताफल	पूसा विश्वास, पूसा विकास पूसा हाइब्रिड–1	3–4 किग्रा0	300 X 75	300–350 400–450
चप्पन कद्दू	पूसा अलंकार (हाइब्रिड) आस्ट्रेलियन ग्रीन, पूसा पसन्द	6–7 किग्रा0	60 X 60	200–250

खरीफ प्याज उत्पादन की तकनीकी

उत्तरी भारत में प्याज की खेती सामान्यतया रबी फसल के रूप में की जाती है, जबकि महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडू में इसकी खेती खरीफ तथा रबी दोनों मौसमों में की जाती है। खरीफ प्याज के मामले में महाराष्ट्र में सबसे अधिक क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है और फसल की कटाई अक्टूबर– दिसम्बर के बीच की जाती है। भंडारण के दौरान कन्दों में अंकुरण निकलने के कारण फसल को अक्टूबर के बाद भंडारित नहीं किया जा सकता । उत्तरी भारत के बाजार में रबी फसल आने से पहले महाराष्ट्र में पैदा होने वाली खरीफ फसल की प्याज अक्टूबर–अप्रैल तक उपलब्ध रहती है। सीमित उत्पादन तथा भारी परिवहन खर्चों के कारण इस अवधि के दौरान प्याज के दाम कहीं अधिक होते हैं। प्याज की खरीफ फसल की महत्ता को देखते हुए शाकीय विज्ञान संभाग, भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली ने उत्तरी भारत में प्याज की खरीफ फसल की संभावनाओं की पहल की। इस संभाग द्वारा सृजित प्रौद्योगिकी यहां नीचे दी गई है जिसे दिल्ली, हरियाणा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के किसानों ने अपने खेतों में अपनाया है।

किस्में: एन–53, एग्रीफाउंड डार्क रेड, बसवन्त–780, अर्का कल्याण तथा पूसा रिद्धि

पौध तैयार करना: प्याज की पौध उठी हुई क्यारियों में तैयार करनी चाहिए। बीज डालने से पहले मिट्टी को उपचारित करना चाहिए। क्यारियों में बीज बोने से पहले केप्टान के 0.3 प्रतिशत घोल से 5 लीटर प्रति वर्गमीटर की दर से उपचारित कर लेना चाहिए। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में बीज की बुवाई मध्य जनवरी से फरवरी के प्रथम सप्ताह तक की जानी चाहिए। प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल में लगभग 15–20 ग्रा. बीज बोया जाना चाहिए। एक हैक्टयर भूमि में लगाने के लिए 50–55 क्यांरियां 3.0 मी.^{2} क्षेत्रफल की पर्याप्त होती हैं जिनमें 8 से 10 किलो बीज की बुवाई करते हैं।

पौध रोपण: खरीफ प्याज के लिए फरवरी में प्याज की नर्सरी बनाकर मई में सेट (कन्द) तैयार कर लेते है। इन सेटो को जुलाई – अगस्त में उॅची मेंडों पर लगाते है। इसके अलावा सीधे पौध तैयार करके भी जुलाई – अगस्त में रोपाई कर सकते हैं। परन्तु सेट से पैदावार ज्यादा मिलती है। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए लगभग 12–15

कुन्तल सेट की आवश्यकता होती है। खेत में 20–25 टन गोबर की खाद के साथ 120 किग्रा0 नाइट्रोजन, 80 किग्रा0 फॉस्फोरस एवं 90 किग्रा0 पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाते है। इसके अलावा 10–15 किग्रा0/है0 सल्फर भी मिलानी चाहिए। खरीफ की प्याज नवम्बर – दिसम्बर में तैयार हो जाती है और एक हेक्टेयर से लगभग 200 कुन्तल प्याज प्राप्त की जा सकती है। खरीफ की प्याज का भण्डारण नही किया जा सकता हैं। इसिलिए इसे खुदाई के बाद लगभग एक महीने के भीतर बाजार में बेच देना चाहिए। चूकिं इस समय बाजार में प्याज की उपलब्धता कम रहती है अतः खरीफ प्याज की बिक्री आसानी से हो जाती है और मुनाफा भी काफी प्राप्त हो जाता है।

कटाईः पत्तियों में रंग फीका पड़ने तथा कंदों का सही आकार होने और उनमें समुचित रंग आने पर, रोपण के लगभग 5 महीने पश्चात दिसम्बर–जनवरी के दौरान फसल की खुदाई की जाती है। कंदों की खुदाई पौधें का ऊपरी भाग बनाए रखते हुए की जाती है (कम तापमान के कारण वे सूख नहीं पाते) । ऊपरी भाग को सूखने के उद्देश्य से फसल को कुछ दिनों के लिए खेत में ही रखा जाता है। बाद में पत्तियों को हटा दिया जाए और कंदों को बाजार में भेजने से पहले 2–3 दिन तक सुखाया जाए।

भंडारणः बढ़वार को नियंत्रित करने तथा कंदों को सूखा तथा गठीला होने देने के लिए कटाई से 10 दिन पहले ही सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। एम एच–40 (मेंलेइक हाइड्रेज़ाइड) घोल 2500 पी पी एम (मि.ग्रा./लीटर जल) का छिड़काव रोपण के 90–95 दिन बाद करने से भंडारण के दौरान कंदों में अंकुरण फूटने में कमी आती है।

पैदावारः खरीफ फसल की पैदावार 150–200 क्विंटल/हेक्टेयर है, जोकि रबी फसल की तुलना में कम है। अच्छे प्रबंध से पैदावार को 250 क्विं./है. तक बढ़ाया जा सकता है।

सब्जियों की प्रमुख बीमारियॉ एवं कीट प्रबन्धन

फसल	प्रमुख बीमारियाँ एवं रोकथाम	प्रमुख कीट एवं रोकथाम
बैगन	**फोमोप्सिस ब्लाइटः** डायथेन एम–45 या रीडोमिल 1.5–2 ग्राम प्रति लीटर पानी ।	**तना एवं फल छेदकः** 20 फेरोमोन ट्रेप प्रति हेक्टेयर। मेंलाथियान 1.5 मि.ली. प्रति ली. या रोगर (डाईमेंथोएल) दवा की 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी।
मिर्च	**एन्थ्रैकनोज–** डाइथेन एम. – 45 @ 2ग्राम/ली0 पानी या ब्लाइटाक्स @ 2ग्राम/ली0 पानी। **लीफ कर्ल विषाणु–**इमिडाक्लोरोप्रिड @ 4 मिली0/10 ली0 पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली0 पानी।पीला ट्रेप का प्रयोग करें ।	**एफिड–** रोगर @ 2 मिली0/ली0 पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली0 पानी या स्पिनोसेड 1 ग्राम/4 ली0 पानी । **माइट–** स्पाइरोमेंसीफेन @ 3–5 ग्राम/10 ली0 पानी।
टमाटर	**डैम्पिंग आफ–** थीरम @ 3 ग्राम/किग्रा0 बीज या 1 ग्राम थीरम एवं 1 ग्राम कार्बन्डाजिम/किग्रा0 बीज। **लीफ कर्ल विशाणु–**इमिडाक्लोरोप्रिड @ 4 मिली0/10 ली0 पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली0 पानी। **लेट ब्लाइट–** रीडोमिल @ 1ग्राम/ली0 पानी।	**फली छेदक–** टमाटर की प्रति 16 पंक्तियों पर ट्रैप फसल के रूप में एक पंक्ति गेंदे की फसल लगाए। इमामेंक्टिन बेन्जोट 5 एस.जी. 1 ग्राम/2 लीटर या स्पिनोसैड 45 एस. सी. 1 मि.ली./4 लीटर पानी का इस्तेमाल करे। **सफेद मक्खी–** ट्राइजोफॉस @ 1 मिली0/ली0 पानी या इमिडाक्लोरोप्रिड @ 4 मिली0/10 ली0 पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली0 पानी। पीला ट्रेप का प्रयोग करें ।
भिन्डी	**पीला मोजैकः** मेंटासिस्टाक्स या मेंलाथियान 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी। दूसरा छिड़काव इपीडाक्लोपिड 0.25 मि.ली. दवा का प्रति लीटर पानी । **पाउडरी मिल्डयूः** घुलनशील सल्फर के 0.2 प्रतिशत का छिड़काव।	**जैसिडः** मेंलाथियान 1.5 मि.ली. या नुवाक्रान 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी। बुवाई के समय कार्बोफयूरान (3जी) 1.0 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर। **लाल माइटः** इनका प्रकोप जायद के मौसम में अधिक होता है। डाइकोफाल या ओमाइट 2 मिली. प्रति लीटर पानी। स्पाइरोमसीफेनया (ओवरान) 3–5 ग्राम/10 ली0 पानी।

कद्दू वर्गीय	**चुर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू)** : कैराथेन 1 ग्राम प्रति ली. पानी अथवा बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति ली. पानी। **मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू)** : डायथेन एम–45 या रीडोमिल 1.5–2 ग्राम प्रति लीटर पानी । **फ्यूजेरियम बिल्ट** : कैपटाफ 2.0 ग्रा./लीटर पानी में घोल बनाकर जड़ों में प्रयोग करें। फसल बदल–बदलकर बोएं 3 साल के फसल चक्र को अपनाए। **वायरस की बीमारीः** खरपतवार नियंत्रित करें तथा वायरस के संवाहक थ्रिप्स को नियंत्रण में रखें। इमीडाक्लारोप्रिड या फिप्रोनिल 4–5 मिली. प्रति 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। पीला ट्रेप का प्रयोग करें ।	**कद्दू वाला लाल भृंग** : यह कीट फसल की प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों का खाता है। इनसे बचाव के लिए फसल पर कार्बोसल्फान नामक कीटनाशी का 1.5 से 2.0 मिली. प्रति ली. की दर से घोल बनाकर सुबह के समय छिड़काव करे। **फल मक्खी** : यह मक्खी फलों पर अण्डे देती है। बाद में लार्वा फलों में घुसकर उन्हें अन्दर से खाते रहते हैं। इस कीट से बचाव हेतु बेलों पर स्पिनोसैड 45 एस. सी. 1 मि.ली./4 लीटर पानी का इस्तमेंाल करे। पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इससे बचाव के लिए 10 से 15 फेरोमेंन ट्रेप ¼फल मक्खी के नरो को आकर्षित करने के लिए ''मिथाइल युजिनोल'' पाष का प्रयोग½ प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना चाहिए।

इसी प्रकार यदि किसान उपर्युक्त अत्यधिक पैदावार देने वाली नई प्रजातियों विशेषकर रोगरोधित एवं संकर प्रजातियों के बीज लगाने के साथ, सब्जी लगाने की नई विधियों, खरपतवार एवं बीमारियों तथा कीडों की रोकथाम के लिये उपलब्ध नये रासायनिक दवाओं, सिंचाई के आधुनिक तरीको जैसे स्प्रिंकलर एवं ड्रिप सिंचाई पद्धतियों का उपयोग अपनी खेती में करें तो वे अपनी कृषि में आने वाली लागत को कम करके उससें कई गुणा अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

जैविक एजेंट तथा जैविक कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा कृषि रक्षा प्रबंधन

प्रमोद कुमार[1], ऋषभ कुमार सिंह[2], एवं अश्वनी कुमार वर्मा[3]
[1]शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि., कानपुर
[2]शोध छात्र, बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि., कानपुर
[3]शोध छात्र, कृषि प्रसार विभाग, चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि., कानपुर

फसल पैदावार बढ़ाने के लिए किसान उन्नत बीज, संतुलित खाद व सिंचाई आदि सभी संभव प्रयास करते हैं, फिर भी फसल में रोग व कीटों का प्रकोप होता है। उनकी रोकथाम के लिए किसान रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल करते हैं, जो फसल और भूमि के साथ–साथ किसानों के लिए भी हानिकारक है। कीटनाशकों से जहाँ फसल के जरिए कुछ विषैले तत्व मनुष्य के शरीर में पहुंचते हैं, वहीं कीटनाशकों के छिड़काव के दौरान कई किसान अपनी जान भी गंवा बैठते हैं। इन हानिकारक रासायनों का प्रयोग करने से जहाँ कीटों, रोगों एवं खरपतवारों में सहनशक्ति पैदा होने के साथ ही कीटों के प्राकृतिक शत्रु (मित्र कीट) प्रभावित होते है। इन कीटनाशकों के अवशेष खाद्य पदार्थों, मिटटी, पानी एवं हवा को भी प्रदूषित करने लगते हैं। कीटनाशक रासायनों के हानिकारक प्रभाव से बचने और फसल की सुरक्षा के लिए जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए वैज्ञानिक भी किसानों को जैविक खेती के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।

एजेंट एवं जैव कीटनाशी

जैविक एजेंट एवं जैविक कीटनाशी, जीवों, कीटों, फफूँदों, जीवाणुओं एवं वनस्पतियों पर आधारित उत्पाद है जो फसलों, सब्जियों, एवं फलों को कीटों एवं रोगों से बचाकर उत्पादन बढ़ाने में सहयोग करते हैं तथा 20 से 40 दिनों के अंदर भूमि एवं जल से मिलकर जैविक क्रिया का अंग बन जाते हैं तथा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को कोई हानि नहीं पहुंचते है।

जैविक कीटनाशकों से लाभ

- जीवों एवं वनस्पतियों पर आधारित होने के कारण, जैविक कीटनाशक लगभग एक माह में भूमि में मिलकर अपघटित हो जाते हैं तथा इनका कोई अंश अवशेष नहीं रहता। यही कारण है कि इन्हें पारिस्थितकीय मित्र के रूप में जाना जाता है।
- जैविक कीटनाशक केवल लक्षित कीटों एवं बीमारियों को मारते हैं, जबकि कीटनाशकों से मित्र कीट भी नष्ट हो जाते है।
- जैविक कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों में सहनशीलता एवं प्रतिरोध उत्पन्न नहीं होता जबकि अनेक रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों में प्रतिरोध क्षमता उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण उनका उपयोग अनुपयोगी होता जा रहा है।
- जैविक कीटनाशकों के प्रयोग के तुरन्त बाद फलियों, फलों एवं सब्जियों की कटाई कर प्रयोग में लाया जा सकता है, जबकि रासायनिक कीटनाशकों के अवशिष्ट प्रभाव को कम करने के लिए कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
- जैविक कीटनाशकों के सुरक्षित, हानिरहित तथा पारिस्थितिकीय मित्र होने के कारण विश्व में इनके प्रयोग से उत्पादित चाय, कपास, फल, सब्जियाँ, तम्बाकू, तथा खाद्यान्न, दलहन एवं तिलहन की मांग एवं मूल्यों में वृद्धि हो रही है, जिसका परिणाम यह है कि कृषकों को उनके उत्पादों का अधिक मूल्य मिल रहा है।

जैविक एजेंट एवं जैविक कीटनाशकों का प्रयोग

1. ट्राइकोग्रामा (ट्राइकोकार्ड)

यह एक प्रकार का अण्ड–परजीवी मित्र कीट है जो लेपिडोप्टेरा परिवार के लगभग 200 प्रकार के नुकसानदेह

कीड़ों के अण्डों को खाकर जीवित रहता है। इसका बहुगुणन प्रयोगशाला में धान के कीट कोर्सेरा के अण्डों पर किया जाता है। कोर्सेरा कीट के अण्डों के एक महीन सतह पर 6×2 इंच के कार्ड को चिपका कर बनायी जाती है, इस कार्ड को ट्राइकोकार्ड कहते है। सामान्यतः एक कार्ड पर 20 हज़ार अंडे होते है। हमारे देश में ट्राइकोग्रामा के दो प्रजातियों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है–

- ट्राइकोग्रामा जपोनिकम
- ट्राइकोग्रामा केलोनिस

गन्ना, मक्का, दलहन, धान, कपास, सूरजमुखी, फलों एवं सब्जियों के नुकसाानदायक पट्टी लपेटक, तना भेदक, फली भेदक आदि जैसे कीड़ों का जैविक विधि से नियंत्रण करने के लिए ट्राइकोग्रामा का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से लगभग 75 से 90 प्रतिशत क्षति को रोका जा सकता है।

प्रयोग विधि

ट्राइकोग्रामा को विभिन्न फसलों में 10–15 दिन के अंतराल पर 3–4 बार लगाया जाता है। फसल में जैसे ही हानि कारक कीड़ों के अंडे दिखयी दें तुरंत ही कार्ड को छोटे–छोटे टुकड़ों में कैंची की सहायता से काटकर फसल के विभिन्न भागों, पत्तियों की निचली सतह पर या तने पत्तियों के जोड़ पर धागे की सहायता से बांध दें। सामान्य फसलों में 5 किन्तु बड़ी फसलों जैसे गन्ना में 10 कार्ड प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग किया जा सकता है। ट्राइकोग्रामा के प्रयोग करने से पहले इस बात का ध्यान रखें कि इसे शाम के समय लगाए तथा लगाने के बाद किसी भी कीटनाशक का प्रयोग न करें। ट्राइकोकार्ड को खेत में प्रयोग करने से पूर्व तक 5–10 डिग्री तापमान पर बर्फ के डिब्बे या रेफ्रेजरेटर में रखना चाहिए।

2. ट्राइकोडर्मा

ट्राइकोडर्मा एक घुलनशील जैविक फफूंदी नाशक है। यह मृदा जनित रोगों को उत्पन्न करने वाले कारकों जैसे– फ्यूजेरियम, पिथियम, फाइटोफ्थोरा, राइजोक्टोनिया, स्क्लैरोशियम, स्कलैरोटिनिया इत्यादि के वृद्धि को रोककर अथवा उन्हें मारकर पौधों में उनके द्वारा होने वाले रोगों से सुरक्षा करता है। इसके अलावा ये सूत्रकृमि से होने वाले रोगों से भी पौधों की रक्षा करते हैं। हमारे देश में ट्राइकोग्रामा के दो प्रजातियों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है–

- *ट्राइकोडर्मा विरडी*
- *ट्राइकोडर्मा हरजिनम*

गन्ना, कपास, दलहनी फसलें गेहूँ, सब्जियों, फलों एवं फल वृक्षों पर रोगों से यह प्रभावकारी रोकथाम करता है। यह मुख्यतः दो प्रकार से रोगकारकों की वृद्धि को रोकता है। प्रथम, यह विशेष प्रकार के प्रतिजैविक रसायनों का संश्लेषण एवं उत्सर्जन करता है, जो रोगकारक जीवों के लिये विष का काम करते हैं। दूसरा, यह प्रकृति में रोगकारकों पर सीधा आक्रमण कर उसे अपना भोजन बना लेता है या उन्हें अपने विशेष एन्जाइम जैसे काइटिनेज, β–1,3, ग्लूकानेज द्वारा तोड़ देता है। इस प्रकार रोगकारक जीवों की संख्या तथा उनसे होने वाले दुष्प्रभाव को कम करके पौधों की रक्षा करता है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग की विधि

- **बीजोपचारः** बीजोपचार के लिये प्रति किलो बीज में 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को मिश्रित कर छाया में सुखा लें फिर बुवाई करें।
- **मृदा शोधनः** एक किलोग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को 25 किलोग्राम कम्पोस्ट (गोबर की सड़ी खाद) में मिलाकर एक सप्ताह तक छायादार स्थान पर रखकर उसे गीले बोरे से ढँकें ताकि इसके बीजाणु अंकुरित हो जाएँ। इस कम्पोस्ट को एक एकड़ खेत में फैलाकर मिट्टी में मिला दें फिर बुवाई/रोपाई करें।
- कंद/कार्म/राइजोम/नर्सरी पौध का उपचार 5–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति लीटर पानी में डालकर घोल बना लें फिर इस घोल में कंद को 30 मिनट तक डुबाकर रखें। इसे छाया में आधा घंटा रखने के बाद बुवाई करें।

3. *ब्यूवेरिया बेसियाना*

ब्यूवेरिया बेसियाना एक फफूंद आधारित कीटनाशक उत्पाद है, जो विभिन्न प्रकार के फफूंदों को नियंत्रित करता

है यह लेपिडोप्टेरा तथा स्पोडोप्टेरा कुल के कैटरपिलर के नियंत्रण के लिए प्रभावी होता है। यह दीमक की रोकथाम में भी प्रभावकारी है।

प्रयोग विधि

ब्यूवेरिया बेसियाना का छिड़काव 1.0 किलो प्रति लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 12–15 दिन के अंतराल पर शाम के समय किया जाना चाहिए।

4. न्यूक्लियर पॉली हेड्रासिस (एन०पी०वी०)

न्यूक्लियर पॉली हेड्रासिस (न०पी०वी०), वायरस पर आधारित एक तरल जैव कीटनाशी है, जो हरी सूंडी (हेलीकोवर्पा आर्मीजेरा) तथा तम्बाकू सूंडी (स्पोडोप्टेरा लिटुरा) के नियंत्रण के लिए मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। एन०पी०वी० का प्रयोग कपास, तम्बाकू, टमाटर, मिर्च, भिन्डी, चना, तथा फूलों को नुकसान होने से बचता है।

प्रयोग विधि

प्रयोग करने से पूर्व 1 मिली एन०पी०वी० का 1 लीटर पानी में घोल बनाये तथा ऐसे घोल को 250–500 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 12 से 15 दिनों के अन्तराल पर 2 से 3 छिड़काव फसलों के लिए उपयोगी है। छिड़काव प्रायः सांयकाल को किया जाये तथा ध्यान रहे कि लार्वा की प्रारम्भिक शैषवावस्था अथवा अंडे देने की स्थिति में प्रथम छिड़काव किया जाये।

5. *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस*

यह जीवाणु चने की फसल में उपयोगी पाया गया है। यह जीवाणु पौधें में लगने वाले तीन रोगकारक फफूंदी क्रमशः *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* प्रजाति साइसेरी, रिजोक्टोनिया वर्टीकोला, एवं पीथियम को रोकने में सक्षम है।

प्रयोग विधि

- **बीज उपचार** – सवा एक लिटर पानी में 100–120 ग्राम गुड़ गरम करके चिपचिपा घोल तैयार करने के बाद उसमें 500 ग्राम स्यूडोमोनास का संवर्धन डालकर गाढ़ा घोल तैयार कर लेना चाहिए। यह गाढ़ा घोल 10 किग्रा बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है। बीज में घोल अच्छी तरह से मिलाने के बाद छाया में सुखकर ही बुवाई करना चाहिए।
- **जड़ उपचार**– 500 ग्राम सुखी गोबर की खाद को 2.5 लीटर पानी में डालकर, गाढ़ा घोल तैयार कर ले। इसके बाद 500 ग्राम स्यूडोमोनास संवर्धन को डालकर, इस गाड़े घोल में पौधों की जड़ों को डूबोकर उपचारित करने के उपरांत खेत में लगाना चाहिए। इस प्रकार के उपचार अधिकांशतः सब्जियों वाली फसलों में किया जाता है।
- **मृदा उपचार**– स्यूडोमोनास संवर्धन की 800 ग्राम की मात्रा को विभिन्न फसलों के अनुसार 10–20 किग्रा महीन पिसी हुई मृदा या बालू में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से खेतों में फसलों के बुवाई के पूर्व उर्वरकों की तरह छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

6. *बेसिलस थ्यूनिरजिएंसिस* (बी०टी०)

बी०टी० एक बैक्टीरिया आधारित जैव कीटनाशी है जो सुंडियों पर तत्काल प्रभाव डालता है। इससे सुंडियों पर लकवा, आँतों का फटना, भूखापन तथा संक्रमण होता है तथा वे 2–3 दिन में मर जाती है। इसका प्रयोग मुख्यतः कपास, बैंगन, फूलगोभी, पत्तागोभी तथा भिंडी में बहुत उपयोगी एवं प्रभावशाली होता है।

प्रयोग विधि

बी०टी० का प्रयोग छिड़काव द्वारा किया जाता है। प्रति हेक्टेयर 600–1000 ग्राम की मात्रा को 500–700 लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर 2–3 छिड़काव लाभकारी है।

7. एजाडिरेक्टिन (नीम का तेल)

यह नीम के बीज एवं गुदा के तत्वों पर आधारित तरल प्राकृतिक कीटनाशी है जिसमें एजाडिरेक्टिन एवं सैलानिन तत्व पाये जाते हैं तथा फसलों को सुरक्षा प्रदान करता है। इसका तेल, खली एवं पत्तियाँ, पौध संरक्षण एवं कीट नियंत्रण में प्रयोग की जाती है।

इसकी गंध एवं स्वाद कीड़ों को भगाती है, जो फसलों को कीटों एवं रोगों के द्वारा होने वाले हानि से बचाता है। नीम का तेल कपास, चना, धान, अरहर, तिलहन तथा टमाटर में नुकसान पहुँचाने वाले गोलवार्म, माहूँ, सफ़ेद मक्खियाँ, फुदका, कटुआ सुंडी तथा फल बेधक सूंडी पर प्रभावशाली है।

प्रयोग विधि

एक लीटर मात्रा को 200–300 लीटर पानी में घोल बनाकर अण्डों से बच्चे निकालने या उसके तुरंत बाद की स्थिति में छिड़काव करना लाभदायक है।

8. फेरोमोन ट्रैप (गंध पाश)

फेरोमोन ट्रैप फसलों को नुकशान करने वाली सूंडिओ के नर पतंगों को फसाने के लिए चमकीले प्लास्टिक का बना होता है। इसमें कीप के आकर के मुख्य भाग पर लगे ढ़क्कन के मध्य में मादा कीट की गंध (ल्योर) लगाया जाता है जो नर पतंगों को आकर्षित करता है। कीप के निचले भाग पर पॉलीथीन की थैली लगायी जाती है जिसमें पतंगे फंस जाते है। थैली के निचले मुख पर से रबर बैंड हटाकर फसे पतंगों को निकाल कर मार दिया जाता है।

प्रयोग विधि

फेरोमोन ट्रैप को खेत में पतंगों की उपस्थिति पता करने के लिए 5–6 ट्रैप प्रति हेक्टेयर के दर से तथा अधिक संख्या में पकड़ने के लिए 15–20 ट्रैप प्रति हेक्टेयर की दर से लगाया जाता है । इसे खेत में कीप पर लगे हत्थे द्वारा डंडे पर फसल की उचाई से 1–2 फीट ऊपर लगया जाता है।

फसल पैदावार बढ़ाने के लिए किसान उन्नत बीज, संतुलित खाद व सिंचाई आदि सभी संभव प्रयास करते हैं, फिर भी फसल में विभिन्न प्रकार के रोगों एवं कीटों का प्रकोप होता है। देश में फसलों को कीटों, रोगों एवं खरपतवारों आदि से प्रतिवर्ष 15–20 प्रतिशत तक की हानि होती है जिसमें लगभग 34 प्रतिशत खरपतवारों द्वारा, 26 प्रतिशत रोगों द्वारा, 20 प्रतिशत कीटों द्वारा, 7 प्रतिशत भण्डारण के कीटों द्वारा, 6 प्रतिशत चूहों द्वारा तथा 8 प्रतिशत अन्य कारण सम्मिलित है। उनकी रोकथाम के लिए किसान रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल करते हैं, जो फसल, भूमि एवं पर्यावरण के साथ–साथ किसानों के लिए भी हानिकारक है। कीटनाशक रासायनों के हानिकारक प्रभाव से बचने और फसल की सुरक्षा के लिए जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है।

मैदानी क्षेत्रों में सफल वर्षा पोषित कृषि के लिए जल संग्रहण प्रविधियां

अनिल कुमार मिश्र[1], सुषमा सुधिश्री[2], एवं मानसिंह[3]
[1.व 2.] प्रधान वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियंत्रण), [3.] प्राध्यापक तथा परियोजना निदेशक, जल प्रौद्योगिकी केंद्र
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली 110012

यद्यपि भारत की औसत वार्षिक वर्षा 119 सेंटीमीटर है परंतु वर्षा वितरण में सामयिक और स्थैतिक रूप से घोर असमानता दृष्टिगत होती है. वर्षा की मात्रा समय के साथ घटती बढ़ती रहती है अर्थात विभिन्न वर्षों में प्राप्त होने वाली वर्षा की मात्रा एक समान नहीं है तथा एक वर्ष में कभी अनावृष्टि तो कभी अतिवृष्टि होने लगी है. एक ही मौसम में वर्षा एक सामान रूप से नहीं होने से कभी फसलों को जल की अतिशय कमी और कभी अधिकता होने लगी है जिसका सम्यक निदान किये बिना सफल कृषि असंभव है. इसके अतिरिक्त पूर्व की भांति अब वर्षा का आरंभ होना सर्वथा अनिश्चित सा हो गया है और मौसम लगभग एक महीने आगे खिसक गया सा लगता है. वैज्ञानिक इसे वातावरण उष्मन के कारण होने वाले बदलाव यह वातावरण परिवर्तन मानते हैं जिनके कारण विभिन्न प्रकार की आपदाओं की आकृति और तीव्रता परिवर्तनीय होने लगी है जो किन्ही–किन्ही स्थानों पर अत्यधिक तबाही और बर्बादी का कारण बन रही है। अनावृष्टि और अतिवृष्टि अर्थात बाढ़ और सूखा भिन्न–भिन्न स्थानों पर बढ़ते–घटते क्रम में हो सकती है या फिर एकांतर क्रम से अथवा क्रमिक रूप से. इस प्रकार के परिवर्तन न केवल जनसाधारण बल्कि कृषकों को अत्यधिक या घोर विपत्ति में डाल देते हैं।

इन सभी समस्याओं के अंतर्गत हमारे देश की कृषि विभिन्न प्रकार की विपरीत परिस्थितियों का सामना करने को बाध्य है. परिणाम स्वरूप भारत के समस्त कृषि क्षेत्रफल का लगभग दो–तिहाई अभी भी आप मुख्य रूप से वर्षा पोषित ही कहा जा सकता है। मैदानी क्षेत्रों में वर्षा पोषित परिस्थितियों में सफल कृषि हेतु उपलब्ध वर्षा जल की एक–एक बूंद मूल्यवान होती है। इस कारण कृषकों को विशेष रुप से सचेत रहने की आवश्यकता है. जिससे वह वर्षा काल में उपलब्ध समस्त जल का समय सम्यक संरक्षण, संग्रहण, और मितव्ययिता पूर्वक उपयोग करते हुए सफलतापूर्वक फसल उत्पादन करने में सक्षम हो सकें. इस हेतु संस्थानिक जल संग्रहण प्रवृत्तियों के साथ–साथ अथवा जल संग्रहण, अपवाह जल का यथोचित भंडारण एवं मितव्ययिता पूर्वक उपयोग करते हुए फसलोंत्पादन कर सकें. इस आलेख में हमने कृषक बंधुओं को वर्षा पोषित अवस्थाओं में सम्यक जल प्रबंधन की प्रविधियों का विस्तृत निरूपण करेंगे जो की अल्प ढलान अथवा समतल मैदानी क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है. वर्षा पोषित अथवा सिंचित क्षेत्रों में भी वर्षा काल में उपलब्ध जल का सम्यक प्रबंधन करने से वर्षा काल में उपलब्ध जल से सफलतापूर्वक फसल उत्पादन कैसे संभव है इसके लिए विभिन्न तकनीकियों की गहन जानकारी निम्लिखित अनुच्छेदों में विधिवत प्रस्तुत की गई है।

1. वर्षा जल संग्रहण हेतु प्रक्षेत्रों की मेंड़बंदी (खेतों के चौतरफा मेंड़बंदी)

खेत के चारों और मजबूत मेंड़ों की उपस्थिति से वर्षा काल में उपलब्ध जल खेत के बाहर नहीं जा पाता है. और यदि खेत की मेंड़ों की ऊंचाई ठीक–ठीक होगी तो खेत में जो वर्षा जल गिरता है वह दो–तीन दिन में या कई दिन में खेत की निचली परतों में अवशोषित हो जाता है. इस हेतु खेत के चारों ओर मजबूत मेंड़ों बनाना अधिक उचित है. खेत की मेंड़ की सीमायें चित्र 1, 2, और 3 के अनुसार हो सकती हैं.

क. अतिशुष्क तथा अर्ध–शुष्क (0–200 एवं 200 से 500 मिलीमीटर औसत वार्षिक वर्षा वाले) क्षेत्र

अतिशुष्क तथा अर्ध–शुष्क औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र स्थित खेतों में अपेक्षाकृत कम जल वृष्टि की सम्भावनाओं के अंतर्गत (0–200 एवं 200 से 500 मिलीमीटर) वार्षिक वर्षा वाले प्रक्षेत्र आते हैं. कम वर्षा होने और अपवाह कम

होने से अपेक्षाकृत कम ऊंची मेंड़ों से भी सफलता पूर्वक जल संग्रह किया जा सकता है.

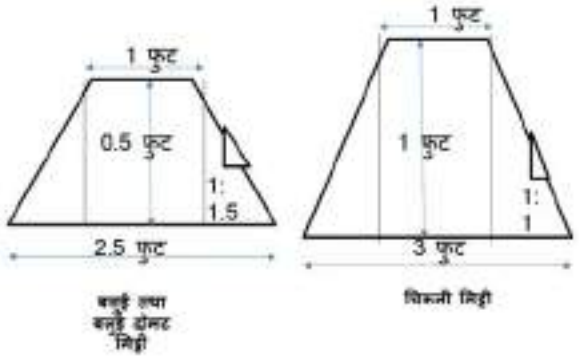

चित्र 1 अति शुष्क तथा अर्ध–शुष्क (औसत वार्षिक वर्षा 0–500 मी.मी.) वाले प्रक्षेत्रों के लिए मेंड़ों की सीमायें

इन क्षेत्रों में वर्षा जल संग्रहण के लिए इस से अधिक ऊंची मेंड़ों की आवस्यकता नहीं होती है परन्तु ग्रीष्म ऋतु में हवा के तेज वहाब के कारण होने वाले मृदा अपरदन या ऐसे ही किन्हीं अन्य समस्याओं के कारण किसान भाई यदि चाहें तो खेतों की मेंड़ो की सीमायें अपने हिसाब से बढ़ा भी सकते हैं मेड़ें मजबूत होनी ही चाहिए। जल संग्रहण हेतु मेंड की जो सीमायें निर्धारित की गयी हैं उन्हें चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है। इन स्थानों में खेतों की मेंड़ों को न तो अधिक ऊंचा और न ही अधिक ऊंचा बनाने की आवश्यकता पड़ती है.

ख. अर्ध–शुष्क और नम (500 से 1000 मिलीमीटर औसत वार्षिक वर्षा वाले) क्षेत्र

अर्ध शुष्क तथा नम औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र स्थित खेतों में अपेक्षाकृत थोड़ी अधिक जल वृष्टि की सम्भावनाओं के अंतर्गत (500 से 1000 मिलीमीटर) खेतों की मेंड़ो की सीमायें निर्धारित की गयी हैं जिन्हें चित्र 2 में प्रदर्शित किया गया है। इन स्थानों में खेतों की मेंड़ों को अपेक्षाकृत पहले अधिक ऊंचा और थोड़ा अधिक ऊंचा बनाने की आवश्यकता पड़ती है।

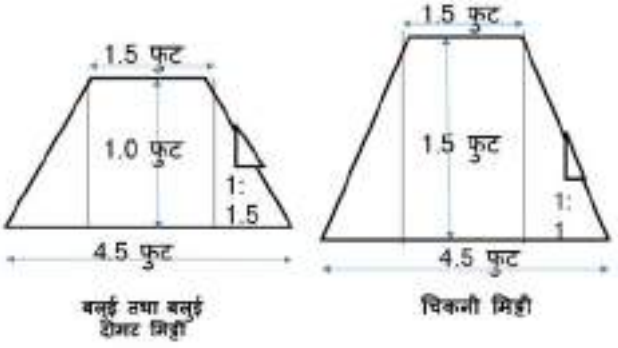

चित्र 2: अर्ध–शुष्क एवं नम जलवायु वाले (औसत वार्षिक वर्षा 500–1000 मी.मी.) वाले प्रक्षेत्रों के लिए मेंड़ों की सीमायें

ग. अति नम (1000 मिलीमीटर से अधिक औसत वार्षिक वर्षा वाले) क्षेत्र

अति नम औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र स्थित खेतों में अपेक्षाकृत अधिक जल वृष्टि की सम्भावनाओं के अंतर्गत (1000 मिलीमीटर से अधिक) खेतों की मेंड़ो की सीमायें निर्धारित की गयी हैं जिन्हें चित्र 3 में प्रदर्शित किया गया है। इन स्थानों में खेतों की मेंड़ों को अपेक्षाकृत पहले अधिक ऊंचा और थोड़ा अधिक ऊंचा बनाने की आवश्यकता पड़ती है जो क्षेत्र अधिक औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में आते हैं जैसे हिमालय की तराई, उत्तराखंड, पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र और पश्चिमी हिमालय क्षेत्र जहाँ की वार्षिक वर्षा और अधिक भी हो सकती है वहां पर और अधिक मजबूत बनाने की आवश्यकता पड़ती है। जिससे अधिकतम पर आधारित भंडारण किया जा सके।

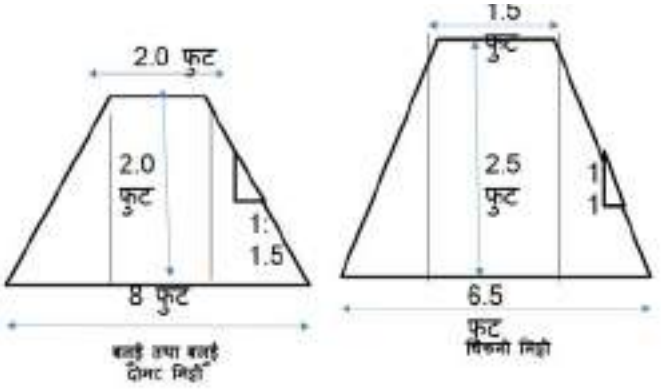

चित्र 3: नम और अधिक वार्षिक वर्षा (औसत वार्षिक वर्षा 1000–1500 मी.मी.) वाले प्रक्षेत्रों के लिए मेंड़ों की सीमायें

वर्षा काल से पूर्व या वर्षा आगमन से पहले खेतों की गहरी जुताई

वर्षा काल आरंभ होने से पूर्व पिछली फसल की कटाई के उपरांत मिट्टी को भुर –भुरा बनाने एवं खेतों की क्ले परत को तोड़कर जल अवशोषण हेतु और अधिक पारगम्यतापूर्ण बनाना आवश्यक है।

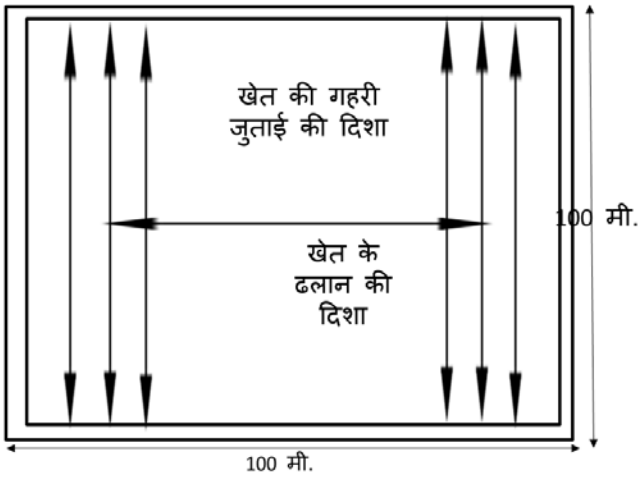

चित्र 4: वर्षा काल के पूर्व खेतों में ढलान के समकोणीय गहरी जुताई (सभी मापें मीटर में हैं.)

इस कारण वर्षा के आगमन से पूर्व एक गहरी जुताई करना अति आवश्यक है। यदि संभव हो सके तो जुताई को खेत की ढलान के अनुसार किया जा सकता है (चित्र 4). यद्यपि इस प्रकार से खेत की जुताई कर के छोड़ देने से अधिक वार्षिक वर्षा वाले खेतों में मृदा क्षरण की समस्या हो सकती है। इस लिए खेतों के बीच में निश्चित अंतराल पर मेंड़बंदी कर के चेक बेसिन जैसी संरचना का बनाना अति आवश्यक है। इस प्रकार खेत में जो भी जल वृष्टि होगी उसे खेत के द्वारा अवशोषित कर लिया जाएगा। खेत के अंदर ढाल पर खेत की जुताई करने के उपरांत बाँध बनाने की एक पारंपरिक विधि आज भी प्रचलित है।

खेतों में एक निश्चित अंतराल पर कम गहरी खात्तियाँ अथवा खान्तियाँ खोद कर वर्षा जल संग्रहण

छत्तीसगढ और झारखंड में जहाँ पर औसत वार्षिक वर्षा थोड़ी अधिक है अपवाह जल खेत से शीघ्रता से बाहर निकल जाता है और भूमि में अवशोषित नहीं हो पाता है। इन सथानों पर जल को रोकने हेतु छोटे छोटे गड्ढों का सहारा लिया जाता है ताकि अपवाह जल को खेत में अधिक समय तक रोका जा सके और बाद में इन में पौधें लगाए जा सकें (चित्र 5)। एक बड़े खेत के अंदर बहुत सारी छोटी–छोटी गड्ढों नमक संरचना का निर्माण किया जाता है जो वर्षा जल के बहाव को रोकने के साथ–साथ जल को भूमि अवशोषित हो जाने के लिए आवश्यक समय प्रदान करने हेतु निर्धारित अवसर प्रदान करता है। इसके साथ साथ अपवाह जल के साथ बहने वाली मिट्टी को भी रोकने में बहुत ही ज्यादा और कारगर साबित होता है। खेत की ढलान वाले किनारे पर छोटे–छोटे गड्ढे बनाने से जल और मृदा दोनों का संरक्षण किया जा सकता है। किसान अपने खेत के ढलान को खूब अच्छी तरह से जानते हैं, और यह अपवाह जल के जाने का मार्ग भी पहचानते हैं. वर्षा पोषित खेती करने वाले किसानों को खेती में ही भंडारण करने के लिए नेत्रों में छोटे छोटे गड्ढे/खत्तियों का निर्माण करना आवश्यक समझते हैं. इस प्रकार के गड्ढे और उन से निकलने वाली मिट्टी को जल संग्रहण के लिए बड़ी आसानी से प्रयुक्त किया जा सकता है. खेत की बाहरी मंद मजबूत बना देने से मृदा क्षरण भी रुक सकता है।

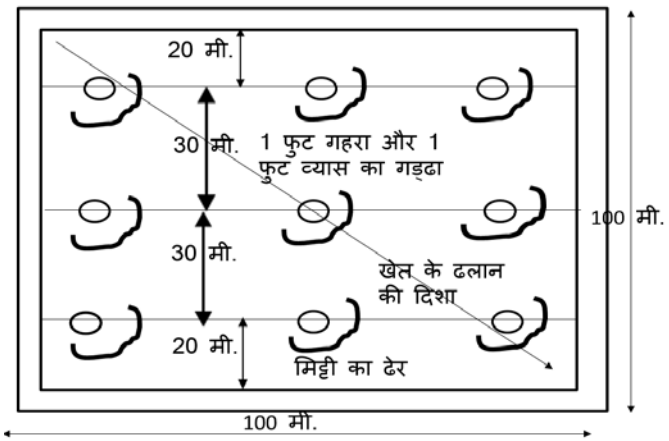

चित्र 5: अपेक्षाकृत कम समतल खेतों में छोटे छोटे गड्ढे बना कर जल संग्रह (सभी मापें मीटर में हैं.)

इन खान्तियों में जमा हुए पानी का प्रयोग पश्चिमी ऐशिया के देशों में नया नहीं है। छत्तीसगढ में इन्हें डाबरी कहा जाता है। सी प्रकार अपातानी मृदा–जल–फसल प्रणाली (अरुणाचल प्रदेश) में इस से मिलती जुलती एक जल संग्रहण प्रणाली देखने में आई है। इस में खेतों के बीच में एक चौकोर गड्ढा बनाते हैं और खेत में चारों ओर्र नालियां बना देते हैं जिनमें पानी भरा रहता है. धान की फसल के साथ साथ मछलियाँ भी छोड़ दी जाती हैं। जब तक धान की फसल में जल जमा रहता है मछलियाँ पूरे खेत में घूमती रहती हैं और जब फसल पकाने पर आती हैं तो खेत में पानी कम हो जाता है तो मछलियां खेत में बने बड़े गड्ढे में हो जाती हैं। धान की फसल काटने के उपरांत उन्हें खेत में से पकड़ लिया जाता है। इस प्रकार मछली धान की खेती में उतने ही पानी से दुगुना उत्पादन होता है। फसल उत्पादन के साथ–साथ एक और फसल

भी प्राप्त कर ली जाती है यह विधि यहाँ पर अति प्राचीन काल से ही प्रचलित है।

समोच्च बांध बना कर अपवाह जल का संग्रहण

ढलान वाले क्षेत्र के ढलान वाली ओर यदि अपवाह के मार्ग में रुकावट ढाल दी जाय तो ण केवल जल के बहाव का वेग कम हो कर उसकी मृदा को अपक्षरित करने की क्षमता घट जाती है वरन इससे जल संग्रह भी होता है जो भूमि के द्वारा या तो अवशोषित कर लिया जाता है या फिर उसे सावधानी पूर्वक जल वाहाव नालियों के द्वारा खेत से निष्काषित कर दिया जाता है (चित्र 6)।

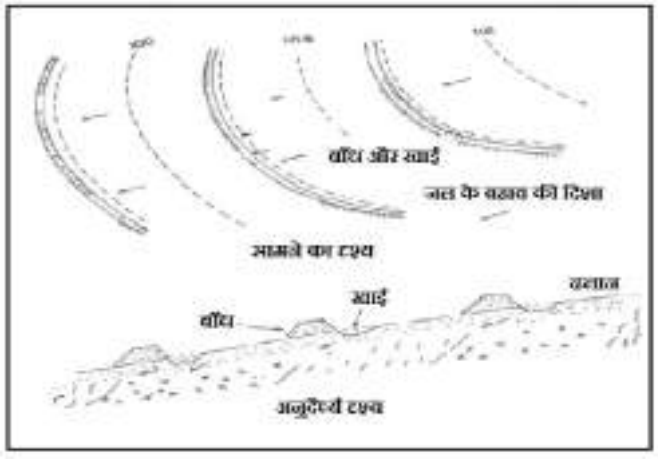

चित्र 6: समोच्च बाँध बना कर जल संग्रहण

समोच्च खाइयां और बांध बना कर अपवाह जल का संग्रहण

कभी कभी जिन क्षेत्रों में मृदा की जल अवशोषण क्षमता अधिक होती है जैसे बलुई मिट्टी वाले क्षेत्रों में वहां पर खाइयों और बंधों का समुच्चय बना कर खाइयों में पानी रोकने से भूमि में अवशोषण तीव्र गति से हो जाता है। इस प्रकार की प्रविधि के प्रयोग से अपवाह जल को खेत में ही रोक लिया जाता है (चित्र 7)।

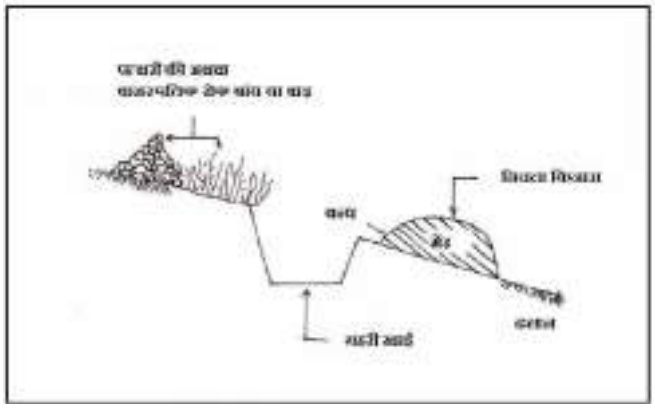

चित्र 7: समोच्च खाई+बाँध बना कर अपवाह जल का भूमि में अवशोषण और भूजल जल पुनर्भरण

समतल खेत की ढलान वाली ओर निरंतर खाइयां और बांध बना कर अपवाह जल का संग्रहण

यदि खेत की ढलान वाली ओर के बांध के समानांतर निरंतर खाई बना दी जाय तो खेत से उत्तपन्न होने वाला

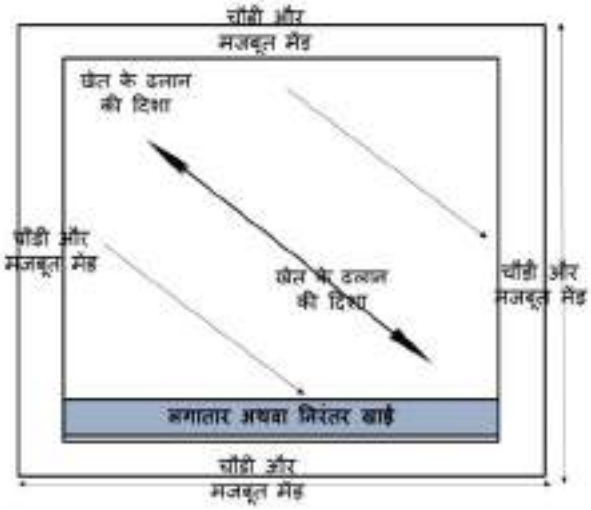

चित्र 8: खेत की ढलान की दिशा में निरंतर खाई खोदने द्वारा खेत का जल खेत में रोकने की प्रविधि

समग्र बहाव खेत को छोड़ कर इन खाइयों में चला जायेगा जिससे बोई गयी फसल पर किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाएँगी। समतल क्षेत्रों

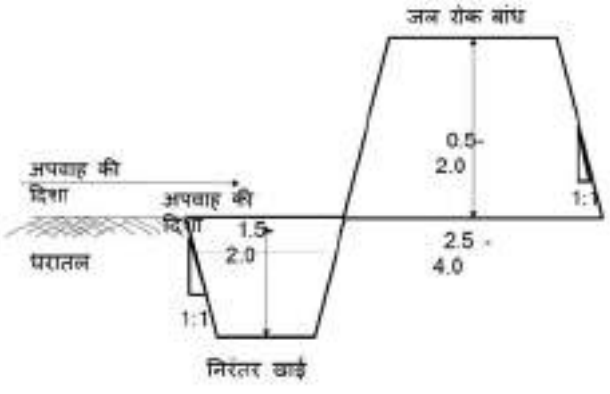

चित्र 9: खेत की ढलान की दिशा में निरंतर खाई तथा उसके पश्च भाग में बांध बनाने हेतु सीमायें (सभी मापें मीटर में हैं.)

में इस प्रकार की खाइयों के निर्माण की सीमायें चित्र 8 तथा 9 में प्रदर्शित की गयी हैं. जल प्रौद्योगिकी केंद्र पर विगत तीन वर्षों से इस प्रकार की खाइयों के निर्माण से शत प्रतिशत अपवाह जल को प्रक्षेत्रों पर ही रोकने और भूमिं में अवशोषित कराने में पूर्ण सफलता प्राप्त की जा रही है। इस प्रकार की संरचनाओं की सीमायें चित्र 9 में प्रदर्शित की गयी है।

मृदा एवं जल संरक्षण हेतु निरंतर लंबी खाइयों अथवा विखंडित खाइयों का उत्खनन और क्षेत्र की ढलान की दिशा में छोड़ने से जल और मृदा कटाव दोनों ही रोके जा सकते हैं। जल प्रौद्योगिकी केंद्र के क्षेत्र के प्रयोग से विगत 3 वर्षों में चार से पांच बड़ी बड़ी खाइयां खुदवाई गयी थीं जिन के द्वारा वर्ष 2019 तथा वर्ष 2020 के वर्षा काल में उपलब्ध लगभग समस्त अपवाह जल को न केवल भूमि में सफलता अवशोषित कर लिया गया है बल्कि किसी भी प्रकार का अपवाह जल प्रौद्योगिकी केन्द्र के प्रक्षेत्र को छोड़ कर बाहर भी नहीं निकल सका है. इस परीक्षण के परिणामों को तालिका 1 में प्रदर्शित किया गया है।

ढलान वाले स्थानों पर निरंतर खाइयां और बंधों के समुच्चय बना कर अपवाह जल का संरक्षण और सावधानी पूर्वक निस्तारण

ऊबड़–खाबड़ और ढलवां स्थलकृतियों में निरंतर खाइयों और बांधो के समुच्चय बना कर न केवल जल का सावधानी पूर्वक निस्तारण बल्कि इसे रोक कर भूमि में अवशोषण भे संभव है। अल्प ढाल (5–10%) वाली स्थलाकृति के लिए खाई के साथ रास्ता और बाँध जल संग्रह और जल निष्कासन संरचना को चित्र 10 में प्रदर्शित किया गया है. इसके साथ साथ तीव्र ढलान (20 –30 %) वाली स्थलाकृति के लिए खाई के साथ रास्ता और बाँध जल संग्रह और जल निष्कासन संरचना की विमाओं को चित्र 11 में प्रदर्शित किया गया है.। वर्षा जल संग्रहण हेतु निरंतर अथवा छोटी छोटी अथवा विखंडित खाइयों और बांधों का निर्माण क्यों आवश्यक है ? जो किसान अपने खेतों के बीच किसी कारणवश तालाब नहीं खुदवा सकते हैं तो उनके खेत की ढलान के साथ–साथ एक गहरी निरंतर खाई अथवा विखंडित खाइयों को खुदवाना उचित रहता है और बांधों का निर्माण तो स्वतः ही हो जाता है। खाइयों से निकली मिट्टी के द्वारा. परन्तु निरंतर अथवा विखंडित खाइयों से निकली हुई मिट्टी को खेत की मेंड़ के ऊपर डाल कर अच्छे से कुटाई कर देना चाहिए, जिससे मिट्टी बैठ जाए और वर्षा जल के द्वारा आसानी से अपक्षरित न होकर नीचे वाले इलाके की ओर न जा सके। यदि खेत में खरपतवार और कार्बनिक अवशेष पड़े हों तो मेंड की ठुकाई के उपरांत उनकी पलवार लगा देने से मृदा के

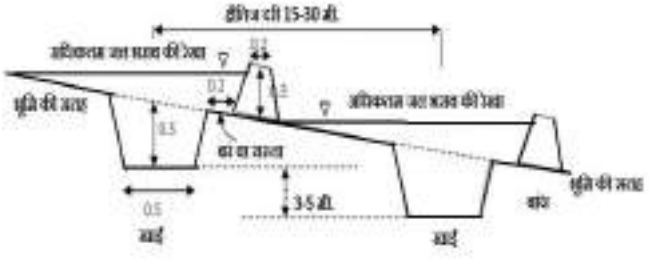

चित्र 10: अल्प ढाल (5–10 :) वाली स्थलाकृति के लिए खाई के साथ रास्ता और बाँध जल संग्रह और जल निष्कास संरचना (सभी मापें मीटर में हैं.)

तालिका 1 जल प्रौद्योगिकी केंद्र के प्रक्षेत्र पर मृदा एवं जल संरक्षण हेतु निरंतर लंबी खाईआं का उत्खनन द्वारा जल संग्रहण के परिणाम

कमांक	प्रक्षेत्र संख्या	खाई खोदने का वर्ष	खाई का प्रकार	खाई की सीमायें (मीटर में)			अपवाह जल अवशोषण	मृदा अपरदन रोकने की दक्षता
				लम्बाई	गहराई	.चौडाई सतह पर	(%)	(%)
1	WTC03a	2019	निरंतर	70	1.5	2.0	100	100
2	WTC03b	2020	निरंतर	65	1.5	2.0	100	100
3	WTC04a	2019	निरंतर	70	1.5	2.0	100	100
4	WTc04b	2020	निरंतर	60	1.5	2.0	100	100
5	WTC02	2019	निरंतर	80	1.5	2.0	100	100

कटाव से बचाव किया जा सकता है। यह विधि न केवल जल बल्कि मृदा के संग्रहण में भी उपयोगी है और इनके द्वारा कृषि कार्यों को करने के उपरांत जल की सतह पर गिरने से मृदा के बहाव के साथ गहरी खाई में जमा होने से मृदा क्षरण रोकने में सहायता प्राप्त होती है।

इसी प्रकार थोड़ी सी परिवर्तनशीलता के आधार पर हम तीव्र ढलान वाली स्थल कृतियों में भी किंचित कम ही सही परन्तु जल और मृदा का सम्यक संरक्षण अवश्य ही कर सकते हैं. ऐसी जगहों के लिए निरंतर खाइयों की जगह पर विखंडित खाइयों को बना कर थोड़े–थोड़े अंतराल पर जल को रोक कर रखना उचित होता है. निरंतर खाइयों में एक साथ अधिक जल इकट्ठा कर के रखने से संरचना के टूटने और अत्यधिक मृदा ह्रास होने के खतरों से बचाने के लिए आवश्यक है कि बहुत सारी छोटी–छोटी संरचनाओं से जो अधिक सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं। वही कार्य संपादित करवाने का प्रयास किया जाय तो अति उत्तम होगा.

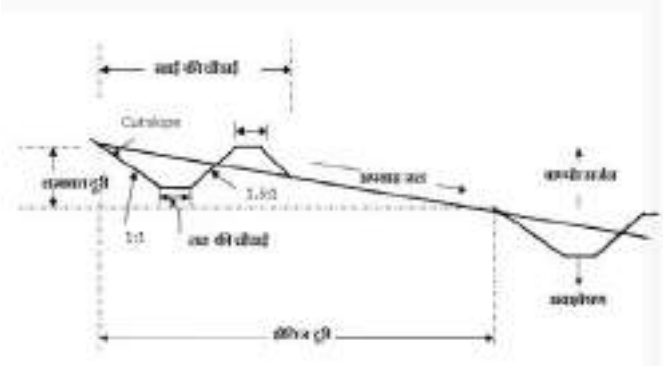

चित्र 11: तीव्र ढाल (20–30 %) वाली स्थलाकृति के लिए खाई के साथ रास्ता और बाँध जल संग्रह और जल निष्कास संरचना

खेतों की ढलवां ओर छोटे–छोटे जलसंग्रहण कुंडों का निर्माण

प्रायः यह देखने में आया है कि लगभग प्रत्येक खेत को पूर्णरूपेण समतल करने के उपरांत भी पानी अपने बहाव की दिशा बना ही लेता है जो कि सर्वथा ढलान वाली और ही होता है. अभी खेत के चारों कोनों में से मात्र एक होने पर ही जल का जमाव पर निश्चित होता है. खासतौर पर जब अधिक वर्षा होती है तो ऐसे स्थलों पर छोटे जल संग्रहण कुंडों का निर्माण हो सकता है जो अपवाह जल को भूमि में अवशोषित करवाएं और आवश्यकता पड़ने पर किसान इन में से पानी भर कर फसल को सिंचन भी कर सके. भारत के उड़ीसा प्रांत में झोला–कुंडी नामक एक प्राचीन परम्परा पहले से ही प्रचलित है। कुछ अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जल संग्रहण एवं उसके पुनर्पयोग हेतु इस तकनीकी को अपनाना यथेष्ट है। मध्य प्रदेश में एक प्रणाली बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है जिसे हवेली प्रथा कहा जता है। इसमें बड़े– बड़े खेतों के (10–20 एकड़ के) चारों ओर बहुत ऊंचे ऊंचे बंधों का निर्माण कर के खेत में प्राप्त हुए समस्त वर्षा जल को चार माह की अवधि के लिए रोक लिया जाता है। उनके चारों ओर बनाऐ गऐ मिट्टी के बड़े बड़े जिनकी आधार पर 25 से 30 फीट और जिनकी ऊंचाई 25 फीट और चौड़ाई 15 से 20 फीट तक की होती है (तो कहीं–कहीं पर अपेक्षाकृत छोटे–छोटे बाँध) इसे हवेली कहते हैं और जिसमें 4 से अधिक महीने तक जल संरक्षित रहता है. इन बांधों के पीछे पानी रुका रहता है तो एक ऊपरिभौमिक तालाब जैसी संरचना बन जाती है। वर्षा काल के उपरांत जल को निष्काषित कर के संग्रहीत मृदा जल आधारित पसलोत्पादन सफलता पूर्वक किया जाता है। अगली फसल की बुवाई के समय पानी को खोल कर बहा दिया जाता है और मृदा जल आधारित खेती की जाती है। इन स्थानों की मृदा की जल धारण क्षमता अधिक होती है अतः रबी की फसल आराम से ली जाती है. राजस्थान में भी इसी प्रकार की एक प्रणाली प्रचलित है जिसे खडींन कहा जाता है। यदि इन हविएलियों में मछली पालन किया जा सके तो इन क्षेत्रों में 4 वर्ष 4 महीनों में मछली की एक फसल आसानी से ली जा सकती है जो अभी तक नहीं किया जा रहा है लेकिन इसको व्यवसाय का रूप दिया जा सकता है।

खेत तालाब या उपरि भौमिक जलसंग्रहण कुंडों का निर्माण

प्राचीन काल से ही गांव के बाहर कई–2 तालाबों की खुदाई की जाती रही है। जिन्हें कालांतर में और गहरा भी किया जाता रहा है तथा उनकी मुंडेरों पर मंदिर इत्यादि बना कर स्नान तथा पूजा अर्चना भी की जाती रही है। भारत के लगभग सभी मंदिरों में मंदिर के प्रांगण से सटे एक तालाब की स्थिति इस बात की परिचायक है कि हमारे देश के लोग जल संग्रहण में सिद्धहस्त थे। किसान भाई भी यदि चाहें तो अपने खेत का एक छोटा सा हिस्सा जल

संग्रहण कुंड के लिए निर्धारित कर के उस में जल भंडारण कर सकते हैं। जिसका विभिन्न प्रकार से उपयोग संभावित है. आज कल की योजना के अनुसार खेत का लगभग 1 प्रतिशत स्थान खेत तालाब बनाने हेतु प्रयुक्त किया जाय तो उत्तम है. सरकारी योजनाओं से अनुदान प्राप्त करना हो तो इस प्रकार के खेत तालाब यदि 20 मीटर x 15 मीटर x 3.5 मीटर के आकार के होंगे तो भारत सरकार द्वारा संचालित कृषि सिंचाई योजना के अंतर्गत ऐसे तालाबों के उत्खनन हेतु 50% से लेकर 100% तक के अनुदान की भी व्यवस्था है. तालाबों की मुंडेर पर हाथी पांव, सूरन या लोकी अथवा फल वाले पौधों का रोपण किया जा सकता है, जो कालांतर में कृषकों के आगे आमदनी का स्रोत बनेंगे जिसमें 1% खेत के क्षेत्रफल की जो हानि होती है उसके द्वारा फसल उत्पादन न हो पाने से होने वाली हानि की क्षति पूर्ति भी की जा सकती है। जल के संरक्षित करने में जो उसे जो भूजल पुनर्भरण और संग्रहीत जल के उपयोग से जो सिंचन किए जाने की अवस्था में प्राप्त होने वाली अतिरिक्त आय से वित्तीय हानि की क्षति पूर्ति या प्रतिपूर्ति की जा सकती है। कृषकों की आमदनी वृद्धि भी होनी सुनिश्चित ही है। खेत में छोटे तालाब की सीमायें चित्र 12 में प्रदर्शित की गई है।

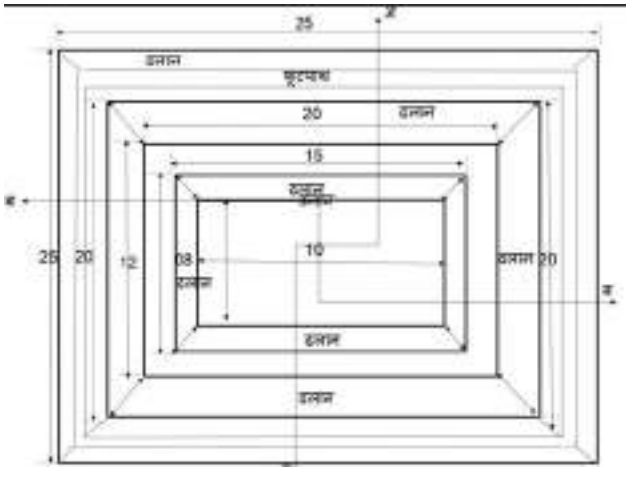

चित्र 12: एक खेत में छोटे तालाब की संरचना हेतु की सीमायें (सभी मापें मीटर में हैं.)

उपसंहार

भारत के उत्तरी मैदानी क्षेत्रों तथा पर्वतीय क्षेत्रों की मृदा में जल अवशोषण क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है. परंतु पठारी क्षेत्रों तथा काली मिट्टी के क्षेत्रों की जल धारण क्षमताएं अधिक पाई गई हैं। विभिन्न परिस्थितियों हेतु विभिन्न उपायों पर चर्चा की गयी है। चित्रों की सीमायें साथ्कृति और मृदा के संघटन के अनुसार निर्धारित की गयी हैं इसी प्रकार अनेकानेक और प्रविधियां भी हो सकती हैं परन्तु इस आलेख में साधारण से प्रयास से की जाने वाली प्रविधियों पर अधिक ध्यान दिया गया है तथा कुछ ही प्रविधियां ढलान वाले क्षेत्रों के लिए वर्णित की गयी हैं। परंतु पर्वतीय और अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के किसान इन प्रविधियों के आलोक में और मैदानी क्षेत्रों हेतु सुझाई गयी सूचनाओं के सहयोग से अपने प्रयासों से अपने अपने क्षेत्रों में जल संग्रहण संरचनाओं का सम्यक निर्माण अवश्य कर सकते हैं जो है भूमि का अपक्षरण नियंत्रण करने के साथ साथ जल अवशोषण करवा कर जड़ों को अधिक समय तक और पोषक तत्वों की आपूर्ति करता रहेगा तथा फसलों के उत्पादन में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगा। इसके साथ ही साथ अपवाह के साथ में अपक्षरित मृदा सहित जल को निचले इलाकों की ओर बहने से बचाएगा एवं सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि निचले इलाके बाढ़ की विभीषिका से भी किंचित सुरक्षित हो सकेंगे।

इस प्रकार से पशुओं, मनुष्यों, फसलों, तथा संसाधानों का हर तरह से न केवल बचाव ही संभव हो सकेगा वरन संसाधनों का समुचित सदुपयोग भी होगा. इस लिए मैदानी एवं पर्वतीय सभी किसान भाइयों को यह सलाह दी जाती है कि वर्षा के आगमन से पूर्व उपरोक्त सभी विधियों को अथवा कुछ विधियों को अपने–अपने प्रक्षेत्रों की निचली ओर ढलान का पता लगाकर, मृदा संघटन के आधार पर शीघ्रातिशीघ्र बना लें या मशीन द्वारा बनवा लेंगे. जिससे जब पानी बरसे तो इन संरचनाओं के पूर्ण लाभ उन्हें प्राप्त हो सके. यहां पर यह बताना भी अत्यावश्यक है और मेंरा पूर्ण दायित्व है कि खेती हेतु जल की उचित मात्रा, गुणवत्ता और अबाध आपूर्ति सुनिश्चित करने से ही फसलें अपना पूर्ण जीवन काल पूरा कर सकती हैं जिनसे उन्नत उत्पादन होने की पूर्ण संभावना बनती है।

गुलाब का प्रवर्धन

नमिता, एम.के. सिंह एवं एस. एस. सिंधु,
पुष्प विज्ञान संभाग
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

पुराने समय में फूलों को घर आँगन में उगाकर धार्मिक उपयोग के लिए ही किया जाता था परन्तु आज उद्यान विज्ञान के विविध उद्योगों में पुष्प उद्योग को एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवयव माना गया है। पुष्प व्यवसाय में कर्तित फूल, लूज फूल, सूखे फूल तथा इनसे बने उत्पाद, कन्द, धनकन्द, गमलों में पौधें, सुगंधित एवं औषधीय उत्पाद, सुगंधित तेल, प्राकृतिक रंग, प्लग पौधें उत्पादन, संरक्षित खेती, बीज उत्पादन, उतक संवर्धन, नर्सरी आदि प्रमुख है। कर्तित फूलों में जैसे गुलाब, कारनेशन, गुलदावदी, ग्लैडियोलस, जरबेरा, आक्रिड, एन्थूरियम, लिलियम, एलस्ट्रोमेंरिया तथा टयूलिप आदि जिनकी किस्मों को मुख्य रूप से ग्रीनहाउस/नियन्त्रित वातावरण में उगायी जाती हैं और उच्च श्रेणी के कर्तित फूलों को मुख्यतः निर्यात किया जाता है, जबकि निम्न श्रेणी के फूलों को घरेलू बाजार में बेचा जाता है। गुलाब एक अत्यंत आकर्षक कर्तित पुष्प है जिसे **'फूलों की रानी'** भी कहा जाता है। अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार जगत में गुलाब का प्रथम स्थान हैं। इसका प्रयोग मुख्य रूप से कर्तित पुष्प के लिए किया जाता है। इसके अलावा इसका प्रयोग इत्र, गुलाब जल तथा गुलकन्द बनाने के लिए किया जाता है। गुलाब का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक दोनों विधियों द्वारा किया जा सकता है।

बीज द्वारा प्रवर्धन

इसका प्रयोग मुख्यतः नई किस्मों के विकास के लिए किया जाता है। शीतोष्ण क्षेत्रों में इस विधि का प्रयोग मूलकांड तैयार करने के लिए भी किया जाता है। इस विधि का प्रयोग व्यापारिक स्तर पर नहीं किया जाता क्योंकि बीज द्वारा तैयार किये गए पौधों में काफी विविधता पाई जाती है। बीज द्वारा प्रवर्धन के लिए पूरी तरह पके फलों को तोड़ कर एवं सुखाकर उसके बाद उससे बीज निकाला जाता है। गुलाब के बीज कुछ समय के लिए विरामवस्था में रहते हैं। विरामावस्था दूर करने के लिए बीजों का स्तरीकरण (स्ट्रैटीफीकेशन) 1.6–4.4°से. तापमान पर करना चाहिए। स्तरीकरण करते समय बीजों और रेत को एक के बाद एक करके विभिन्न परतों में रखा जाता है। *रोज़ा मल्टीफ्लोरा* तथा *रोजा रूगौसा* का स्तरीकरण 6 हफ्तों तक, जबकि *रोजा ब्लैन्डा* का स्तरीकरण 10 महीनें तक करना चाहिए। इसके अलावा गर्म स्तरीकरण के बाद ठंडास्तरीकरण करने से भी विरामावस्था दूर की जा सकती है।

बीज से पौध तैयार करने के लिए बीजों को पैन अथवा फ्लेट में 5 से.मी. की दूरी पर अक्टूबर–नवम्बर में लगाना चाहिए। गुलाब के बीजों के अंकुरण में काफी समय लग जाता है। बीज का सख्त कवच तथा बीज में वृद्धि अवरोधक पदार्थ अंकुरण में बाधा डालते है। इसके अलावा तापमान भी बीजों के अंकुरण को प्रभावित करता है। *रोजा केनिना* के बीजों के अंकुरण के लिए उपयुक्त तापमान 20–25°से. है। बीजों को सल्फयूरिक एसिड से 1–2 घण्टे तक उपचारित करने से अंकुरण जल्दी होता है। इसके अलावा बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए जिब्रेलिक एसिड अथ्वा बेनजाइल एडेनिन का प्रयोग भी किया जा सकता है।

वानस्पतिक प्रवर्धन

गुलाब की किस्मों की विशेषताओं को बरकरार रखने के लिए उनका प्रवर्धन वानस्पतिक विधि द्वारा ही करना चाहिए क्योंकि बीजों द्वारा प्रवर्धन करने से पौधों में काफी विविधता आ जाती है।

1. कलम द्वारा

इस विधि का प्रयोग मूलकांड तैयार करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा लतावर्ग के गुलाब, मिनिएचर तथा रैम्बलर गुलाब का प्रवर्धन कलम द्वारा ही किया जाता है। कलम जड़ तथा तने दोनों से ही ली जा सकती है। *रोजा ब्लैन्डा, रोजा नाइटिडा* तथा *रोजा वरजिनीयाना* की कलमें

जड़ों से ली जाती है। जड़ से तैयार कलमें पाले से प्रभावित नही होती हैं। इस प्रकार की कलमें लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शिखर वाला भाग ऊपर की ओर रहे।

तनें से कलम तैयार करनाः यह गुलाब के प्रवर्धन का एक आसान और सस्ता तरीका है। कलम पूर्ण रूप से स्वस्थ तथा विकसित शाखाओं से ली जानी चाहिए। कलमों द्वारा प्रवर्धन बसन्त ऋतु अथवा वर्षा–ऋतु में करना चाहिए। परंतु मूलकांड तैयार करने के लिए कलमों को नवम्बर से मार्च के बीच में ही लगाना चाहिए। कलम हमेशा फूल देने वाली शाखा से ही लें। कलम की लंबाई 20-22 से. मी. तथा मोटाई पैंसिल के बराबर होनी चाहिए। कलम में 3–4 कलिकायें होनी चाहिए। कलम तैयार करते समय उसके एक सिरे को सपाट और दूसरे सिरे को तिरछा काट लें। कलम से जड़ो के तीव्र विकास के लिए उन्हें सैरेडेक्स नामक रसायन से उपचारित करना चाहिए।

कलमों को नर्सरी में लगाना : सामान्यतः कलमों को रेत में लगाया जाता है। कलमों को पीटमॉस, वर्मीक्यूलाइट तथा परलाइट के मिश्रण में भी लगाया जा सकता है। कटिंग लगाने से पहले रेत अथवा अन्य मिश्रणों को भाप, गर्मी अथवा 2% फर्मोलीन से निर्जीवीकृत करते हैं। निर्जीवीकरण के पश्चात रेत अथवा मिश्रण से क्यारी तैयार की जाती है जिसकी चौड़ाई लगभग 1 मीटर तथा 15–20 से.मी. जमीन से ऊपर उठी हो। कलमों को सीधी पंक्तियों में लगाया जाता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15–20 से. मी. व कलम से कलम की दूरी 10 से.मी. होनी चाहिए। कलम लगाते समय उसका सपाट सिरा मिट्टी के अन्दर दबा दिया जाता है। कलम का लगभग एक तिहाई हिस्सा जमीन के अन्दर दबा दिया जाता है। कलम लगाने के तुरंत बाद उन्हें पानी देना चाहिए। कलम से जड़ के अच्छे विकास के लिए पर्याप्त आर्द्रता होनी चाहिए। इसके लिए मिस्टिंग का प्रयोग भी किया जा सकता है।

2. लेयरिंग द्वारा : इस विधि का प्रयोग मुख्यतः लतावर्ग के गुलाब के प्रवर्धन के लिए किया जाता है।

क) गूटीः इसमें चुनिंदा शाखाओं से छाल को वृत के आकार में निकालते है और उस जगह पर स्फैग्नम मॉस लगाकर उसे पौलीथीन शीट से बांध देते हैं। जड़ों के विकास के लिए वृद्धि बढ़ावक पर्दार्थों का प्रयोग भी किया जाता है।

ख) स्टूलिंगः इस विधि में चुनिंदा शाखाओं को जमीन की और मोड़ कर उन्हें मिट्टी से ढक देते है। शाखा के ऊपरी सिरे को मिट्टी से बाहर ही रखते है ताकि उसमें प्रकाश संशलेषण होता रहे। जमीन में दबे हुए भाग में कुछ हफ्तों बाद जड़ें निकलनी शुरू हो जाती हैं। इस विधि द्वारा लगभग एक महीने बाद पौधें में जड़ें आ जाती हैं।

3. कलम बंधन

इस विधि का प्रयोग व्यापारिक स्तर पर नहीं किया जाता है क्योंकि इस विधि द्वारा तैयार किए गए पौधें काफी महँगे होते हैं। इस विधि द्वारा पौधें तैयार करने में बहुत कम सफलता मिलती है। कलम बाँधने के लिए इनारचिंग तथा क्लैफ्ट कलम बंधन विधि का प्रयोग किया जाता है। कलम बाँधते समय यह ध्यान रहे कि मूलकांड व सॉकुर टहनी ली जानी चाहिए। सॉकुर टहनी में 1–3 कलिका यें होनीं चाहिए।

4.कालिकायन

यह गुलाब के प्रवर्धन की सबसे प्रचलित विधि है। इस विधि द्वारा एक शाखा से ही कई पौधें तैयार किये जा सकते हैं। इस विधि में जिस किस्म के गुलाब के पौधें तैयार करने हो उसकी कलिका लेकर मूलकांड पर बांध दी जाती है। कुछ ही दिनों में जब कलिका से अंकुर फूट जांए तो मूलकांड के कलिका से ऊपर वाले भाग को काट दिया जाता है। 'टी' कलिकायन विधि द्वारा गुलाब का प्रवर्धन व्यापारिक स्तर पर किया जाता है।

कलिकायन का समयः विभिन्न स्थानों में विभिन्न समय पर गुलाब का कलिकायन किया जाता है। कलिकायन उस समय पर किया जाता है जब पौधें में पर्याप्त रस का बहाव होता है। भारत के पूर्वी क्षेत्रों में कलिकायन का उपयुक्त समय जनवरी–मार्च है, जबकि उत्तरी भारत में गुलाब का कलिकायन नवम्बर से फरवरी तक किया जा सकता है। बंगलुरु व पूना जैसे समान जलवायु वाले क्षेत्रों में साल के किसी भी समय गुलाब में कालिकायन किया जा सकता है।

मूलकांडः कलम बांधने तथा कलिकायन के लिए सही मूलकांड का चुनाव अत्यंत आवष्यक है। मूलकांड पौधें की वृद्धि, पैदावार तथा फूलों की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। एक अच्छे मूलकांड की निम्न लिखित विशेषताएँ होती हैं।

- ठसकी जड़े काफी मजबूत होनी चाहिए।
- ठसका प्रवर्धन कलमों द्वारा आसानी से किया जा सकता हो।
- ठसकी छाल मोटी होनी चाहिए ताकि उसमें कलिका को आसानी से लगाया जा सके।
- इसे विभिन्न जलवायु तथा मिट्टी में आसानी से उगाया जा सकता है।
- मूलकांड बीमारियों तथा कीटों से मुक्त होना चाहिए।
- उस परकलिकायन किया गया पौधा लंबे समय तक जीवित रहना चाहिए।

गुलाब के मुख्य मूलकांड

रोज़ा मल्टीफ्लोराः इसका प्रयोग बिहार तथा बंगाल में किया जाता है। इसकी जड़ें सूत्रकृमि से प्रभावित नहीं होती हैं। इसके अलावा यह ठंड या पाले से भी प्रभावित नहीं होता है। परंतु इस पर कलिकायित पौधों की पत्तियाँ गर्मियों में पीली पड़ जाती हैं जिसकी वजह से पौधें मर जाते हैं। इस मूलकांड को गर्म व शुष्क इलाकों में भी आसानी से उगाया जा सकता है।

एडुअर्ड रोज़: इसकी शाखांए लंबी तथा सीधी होती हैं इसलिए इस मूलकांड का प्रयोग स्टैन्डर्ड बनाने के लिए किया जाता है। परंतु इस मूलकांड पर चूर्णित आसिता नामक बीमारी आती है इसके अलावा इस पर बांधी गई कलिकाओं पर डाईबैक बीमारी आती है। इसलिए इसका प्रयोग व्यापारिक स्तर पर पौधें तैयार करने के लिए नहीं किया जाता है। इसका प्रयोग उत्तर भारत के मौदानी क्षेत्रों में किया जा सकता है।

रोज़ा इंडिका किस्म ***ओडोरेटा*** : यह गुलाब का सबसे महत्वपूर्ण मूलकांड है। इसका प्रवर्धन कलमों द्वारा आसानी से किया जा सकता है। इस पर बांधी गई कलिकायें अच्छी गुणवत्ता के फूल प्रदान करती है। इसका प्रयोग शुष्क तथा नमी वाली मिट्टी में किया जा सकता है। इस पर चूर्णित आसिता नामक बीमारी नहीं आती है। इस पर बांधी गई कलिकाओं से तैयार किये गए पौधों को ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती है इसलिए इस मूलकांड का प्रयोग पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी आसानी से किया जा सकता है। इसका प्रयोग उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में किया जाता है।

मूलकांड तैयार करनाः मूलकांड का प्रवर्धन कलम द्वारा मुख्य रूप से किया जाता है। मूलकांड तैयार करने के लिए कलमों को नवम्बर से मार्च के महीनों के बीच में लगाना चाहिए। तैयार कलमों को वर्षा ऋतु में दूसरी क्यारियों में स्थानान्तरित किया जाता है। इसी स्थान पर बाद में मूलकांड पर कलिकायन कर दिया जाता है। क्यारी बनाने से पहले मिट्टी में 5–10 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से सड़ी हुई गोबर की खाद मिला लें फिर लगभग 1 मीटर चौड़ी क्यारी तैयार करें जोकि 15–20 से.मी. जमीन से ऊपर उठी हो। इन क्यारियों में कलमों को दो पंक्तियों में लगाया जाता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. तथा कलम से कलम की दूरी 60 से.मी. होती है। ऐसा करने से कलिकायन बांधने में आसानी होती है। कलिकायन करते समय मूलकांड पर सिर्फ एक ही शाखा रखें बाकी सभी शाखाओं को काटकर निकाल दें। कलिकायन के लिए रखी गई शाखा तने के आधार से निकली होनी चाहिए।

कलिका का चुनावः जिस किस्म का पौधा तैयार करना हो उसी किस्म की कलिका ली जाती है। कलिका हमेशा स्वस्थ तथा अच्छी बढ़वार वाले पौधें से लेनी चाहिए। कलिका लेने के लिए पूर्ण रूप से विकसित टहनी जिसमें फूल आ चुके हों, उसी का चयन करना चाहिए। कलिकायन के लिए उन कलिकाओं का चुनाव करना चाहिए जो स्वस्थ हो और उसमें वृद्धि आरंभ न हुई हो। मूलकांड तथा कलिका टहनी की मोटाई लगभग बराबर होनी चाहिए। एक सॉकुर टहनी से 4–5 कलिकायें निकाली जा सकती हैं। कलिकायें निकालने से पूर्व कॉटों को हटाकर पत्ती के डंठल को लगभग 2 से.मी. ऊंचाई से काट लेते हैं। ऐसा करने से कलिका निकालने में आसानी होती है।

कलिकायन करनाः कलिकायन करने के लिए 1–1.5 से. मी. आकार की कलिका को तेज धार वाले चाकू से ढाल के आकार में निकाल लें। कलिका के साथ जुड़े काष्ठ भाग को सावधानी पूर्वक अलग कर लें। इससे कलिका तथा मूलकांड जुड़ने में मदद मिलती है। कलिकायन करने के लिए मूलकांड पर अंग्रेजी के अक्षर टी (T) के आकार में दो चीरें लगाएं। इसके बाद ढ़ाल के आकार में निकाली कलिका को उस चीरे के अंदर डालकर उसे अच्छी तरह बिठालें और फिर कलिका के चारों और अल्काथेन टेप बाँध लें। कलिकायन के 3–4 सप्ताह के बाद कलिका से अंकुर फूटते हैं। कलिकायन के

3 सप्ताह बाद मूलकांड को कलिका से लगभग 2–5 से.मी. ऊँचाई पर काट लें। जब कलिका से निकली टहनी 15–20 से.मी. लंबी हो जाए तो उस पर 2–3 कलिकायें छोड़कर टहनी के ऊपरी भाग को काट देते हैं इससे और शाखाओं के निकलने में मदद मिलती है और पौधा झाड़ी का आकार ले लेता है। कलिकायन के छह महीने बाद तैयार पौधों को प्रतिरोपण किया जा सकता है।

स्टेंटिंग विधि द्वाराः यह गुलाब की बहुत ही नई विधि है। दिन–प्रतिदिन इस विधि का उपयोग बढ़ता जा रहा है। यह विधि यूरोप से शुरू हुई और आज हमारे देश में भी बहुत प्रचलित होती जा रही है। इस विधि में मूलवृन्त की 1 वर्ष पुरानी पौध से काटकर अलग कर लेते है। इसके उपरान्त उस तने से पेंसिल के मोटाई की 20-22 सें.मी. लम्बी कलम तैयार करते हैं। इसके बाद साइज से कलिका का चुनाव करके टी चष्माविधि से चष्मा बांध देते है। इस विधि में मूलवृंत में जड़ो का फुटाव एवं मुलवृंत तथा कलिका का जुड़ना एक साथ होता है। चश्मा चढ़ाने के उपरांत इसे बालू में रोपित कर देते है। इस प्रकार 3 से 4 महीने में गुलाब का पौधा रोपण के लिए तैयार हो जाता है।

ऊतक संवर्धन विधिः ऊतक संवर्धन विधि से गुलाब का पौधा तैयार करने में कलम एव चश्मा विधि से अधिक लागत लगती है। इस विधि द्वारा तैयार किये गये पौधें रोग रहित होते है। ऊतक विधि से तैयार किये गये पौधों को पुष्पन में आने में अन्य विधि से तैयार किये गये पौधों से अधिक समय लगता है। ऊतक संवर्धन विधि में सुषुप्तावस्था की कलिका से एक्स–प्लांट बनाया जाता है। दो सप्ताह में एक्स प्लांट में जड़े बनने लगती है। प्रयोगशाला के अंतर्गत इस प्रकार के पौधों में पुर्ण रूप से जड़े एवं पत्तियों के साथ तना विकसित होने के उपरांत नियंत्रित वातावरण में 2 से 3 महीने के लिए रखना चाहिए। ऐसा करने से पौधों का प्रतिकुल वातावरण मिलने पर भी मृत्यु दर कम होता है एवं पौधा रोपण के लिए तैयार हो जाते है। यह विधि गुलाब के प्रवर्धन में व्यवसायिक तौर पर नही अपनायी जाती है।

नर्सरी में पौधों का रख रखावः नर्सरी में पौधों को आवश्यकतानुसार पानी डालते रहना चाहिए। खरपतवार को समय–समय पर हल्की निराई करके निकाल देना चाहिए। मूलकांड से निकली शाखाओं काटकर निकाल दें। नर्सरी में ही कुछ पौधें फूल देना शुरू कर देते हैं ऐसे पौधों से पुष्प कलिकाओं को खिलने से पहले ही निकाल देना चाहिए। नर्सरी में बीमारियों व कीटों के रोकथाम के लिए फंफूदीनाशक व कीटनाशक दवाईयों का छिड़काव करते रहना चाहिए। इसके अलावा पौधों के अच्छे विकास के लिए नर्सरी में उर्वरक व खाद भी डालना चाहिए।

नर्सरी की प्रमुख बीमारियाँ

डाईबैकः इस बीमारी की वजह से शाखायें ऊपर से नीचे की तरफ सूखती जाती हैं और इस तरह कुछ समय बाद पौधा मर जाता है। इसके रोकथाम के लिए रोगग्रस्त शाखा को काटकर उसके एक सिरे पर 4 भाग कॉपरकार्बोनेट, 4 भाग रेड लैड और 5 भाग अलसी के तेल का अच्छी तरह मिश्रण बनाकर, उसका लेप लगायें।

चुर्णित आसिताः इस बीमारी में नई शाखायें व पत्तियाँ सफेद दिखने लगती हैं। इसके नियंत्रण के लिए पानी में घुलनषील गंधक या कैराथेन के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

काला धब्बाः इस बीमारी में पत्तियों में काले धब्बे पड़ते हैं। बाद में पत्तियाँ पीली होकर झड़ जाती हैं। इसकी रोकथाम क लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टाफ के घोल का छिड़काव करें। ग्रसित पत्तियों को इकट्ठा करके दबा देना चाहिए।

नर्सरी के प्रमुख कीटः

रैड स्केलः बरसात के मौसम में इस कीट को गुलाब के पौधों पर पॉक्स–चिन्हों के रूप में देखा जा सकता है। यह कीट पौधों से रस चूसता है जिसकी वजह से पौधें सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 0.2% रोगोर या 0.2% मेंलाथिआन का छिड़काव करना चाहिए।

एफिडः यह कीट पत्तियों से रस चूसते हैं। जिसके कारण पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं। यह काले या हरे रंग के कीड़े ज्यादातर जनवरी–फरवरी के महीने में आते हैं। इसके प्रकोप को कम करने के लिए रोगोर या मेंलाथिआन 0.2ः प्रतिशत का घोल बनाकर उसका छिड़काव करना चाहिए।

श्रोज चैफर बीटलः ये जुलाई–अगस्त में पत्तियों को खाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए 0.2% मेंलाथिआन के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

कृषि की आधुनिक तकनीकियां बनी किसानों के लिए वरदान

संजय कुमार गुप्ता, राहुल कुमार एवं प्रशांत सिंह
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली

दुनिया कृषि के क्षेत्र में कहां से कहां पहुंच गई है, पर हमारा देश आज भी मूलभूत समस्याओं से ही जूझ रहा है जैसा की सिंचाई की समस्या है, बिजली की किल्लत है, लेबर सही समय पर नहीं मिल पा रहे हैं मौसम नुकसान पहुंचा रहा है और अनगिनत समस्याओं का भारतीय किसान सामना कर रहा है देश के शैक्षणिक कृषि संस्थानों में एवं अन्य शैक्षणिक संस्थान मिलजुल कर काम कर सकते हैं जैसे कि हम भलीभांति जानते हैं कि आईटी जैसे संस्थानों में देश की महत्वपूर्ण कृषि जगत में प्रयोग होने वाली मशीनों का विकास किया जाता है ऐसे ही कृषि शैक्षणिक संस्थानों के अलावा जो अतिरिक्त बायो टेक्नोलॉजी संस्थान हैं वे ग्रास रूट लेवल पर किसानों के हित के लिए नई प्रौद्योगिकी का विकास कर सके। आज इस आर्टिकल के माध्यम से प्रस्तुत आर्टिफीसियल इंटेलेजन्स और नैनो तकनिकी कुछ ऐसे आधुनिक माध्यम हैं जो कृषि को एक अलग ही स्तर पर ले जायेंगे।

1. इको रोबोटिक्स

यह एक स्मार्ट खरपतवार नाशक रोबोट है जोकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से निर्मित किया गया है यह फसलों के बीच में खुद ही खरपतवार को ढूंढ कर उन्हें नष्ट करने में सक्षम है वह भी बिना फसलों को नुकसान पहुंचाए सौर ऊर्जा से संचालित इस रोबोट से दिन में 12 घंटे तक काम किया जा सकता है 130 किलो वजन है काम करना आसान है इसे हम अपने फोन से एक एप्लीकेशन की मदद से संचालित कर सकते हैं।

2. कृषि में ड्रोन का उपयोग

वर्तमान समय में, खेती में बढ़ते नित नए प्रयोगों को छोटे स्तर पर संचालित करने की आवश्यकता है। आधुनिक समय की मांग के अनुसार, कृषि में ड्रोन्स के प्रयोगों को जगह देनी चाहिए। इसलिए समय की मांग यह है की भारत में भी सरकार के द्वारा ड्रोन्स एवं डिजिटल तकनिकी के प्रति किसानों, लोगों को जागरूक किया जाए। हां, आर्थिक समस्या, भारतीय किसानों के लिए एक बड़ा मुद्दा है लेकिन यथासंभव सरकारी मदद के प्रावधान से इस समस्या का हल किया जा सकता है। जागरूकता की पहल किसान मेलों, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्र से की जा सकती है। कृषि ड्रोन किसान की निगरानी करने की क्षमता में वृद्धि करने में सहायक है तथा दूरस्थ कृषि व्यवसाय के प्रबंधन को भी संभव बनाता है। अंततः यह कहा जा सकता है की ऐसी तकनीकी जो एक सैन्य कार्यो के लिए विकसित की गयी थी अब ग्रीन–टेक्नोलॉजी के रूप में विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिए तत्पर है।

कुछ महत्वपूर्ण उपयोग

- सिंचाई निगरानी और प्रबंधन
- फसल मानचित्रण और सर्वेक्षण
- भू और क्षेत्र विश्लेषण
- छिड़काव
- वास्तविक समय में पशुधन की निगरानी
- बीज रोपण

3. कृषि में नैनोटेक्नोलॉजी का उपयोग

वर्तमान समय में, अपने सूक्ष्म आकार तथा अद्वितीय भौतिक–रासायनिक विशेषताओं के कारण नैनोमैटेरियल्स का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग बढ़ा है। नैनो तकनीक में कृषि संबंधित प्रतिकूल समस्याओं को कम करने के साथ–साथ, पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा व कृषि उत्पादकता में सुधार करने की अपार क्षमता है। कृषि उत्पाद, मानव जीवन के अधिकांश पहलुओं को प्रभावित करते हैं। इनमें दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएं जैसे–ईंधन, कपड़ा, फर्नीचर, भोजन और पशु आहार इत्यादि शामिल हैं। कृषि

से भावी वैश्विक जरूरतों को पूरा करने के लिये प्रौद्योगिक उन्नति की आवश्यकता है। नैनोटेक्नोलॉजी के कृषि क्षेत्रों में विभिन्न अनुप्रयोगों एवं आशंकाओं को संक्षेप में में वर्णित करना चाहूंगा

- नैनौमटेरियल्स द्वारा पौधों की प्रभावी वृद्धि (Mo, SiO_2, ZnO , oa TiO_2)
- नैनोसेल्युलोज पायलट प्लांट
- नैनोकणयुक्त सूती कपड़ा
- नैनोसेल्युलोजयुक्त ग्रीन कंपोजिट
- नैनो उर्वरक
- पूसा हाइड्रोजैल

4. संरक्षित खेती

यह नियंत्रित वातावरण में फसल उगाने की एक प्रक्रिया है। इसका मतलब है कि फसल की आवश्यकता के अनुसार तापमान, आर्द्रता, प्रकाश और ऐसे अन्य कारकों को विनियमित किया जा सकता है। यह एक स्वस्थ और एक बड़ी उपज में सहायता करता है। विभिन्न प्रकार की संरक्षित साधना पद्धतियाँ हैं। आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली प्रथाओं में से कुछ हैं:

- मजबूर हवादार ग्रीनहाउस
- स्वाभाविक रूप से हवादार पॉलीहाउस
- कीट–प्रकोष्ठ शुद्ध घर
- छाया शुद्ध घर
- प्लास्टिक सुरंग
- उठाया बेड, ट्रेलिंग
- ड्रिप सिंचाई

इन प्रथाओं का उपयोग स्वतंत्र रूप से या संयोजन में किया जा सकता है, ताकि पौधों को कठोर जलवायु से बचाने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया जा सके और खेती या ऑफ–सीजन फसल उत्पादन की अवधि बढ़ाई जा सके। उठी हुई क्यारियों के नीचे टपक सिंचाई को अपनाना वाष्पीकरण के नुकसान को कम करके लंबे समय तक मिट्टी में नमी बनाए रखता है।

5. हाइड्रोपोनिक्स

मृदा–रहित बागवानी के विज्ञान को हाइड्रोपोनिक्स कहा जाता है। इसमें मूल रूप से एक खनिज मिट्टी के पानी के समाधान की तरह पोषक तत्व का उपयोग करके पारंपरिक मिट्टी के माध्यम के उपयोग के बिना स्वस्थ पौधों को उगाना शामिल है। एक पौधें को उगने के लिए कुछ पोषक तत्वों, थोड़े से पानी और धूप की जरूरत होती है। न केवल पौधें मिट्टी के बिना बढ़ते हैं, वे अक्सर पानी में अपनी जड़ों के साथ बहुत बेहतर बढ़ते हैं।

6. एरोपोनिक्स

यह मिट्टी के बिना और बहुत कम पानी के साथ पौधों को उगाने का एक तरीका है। यह थोड़ा अजीब लगता है, लेकिन यह विभिन्न प्रकार के पौधों को उगाने का एक बहुत प्रभावी और कुशल तरीका है। इस पद्धति का उपयोग करने का मतलब है कि आप लंबवत और साथ ही क्षैतिज रूप से बढ़ सकते हैं, इसलिए यह अंतरिक्ष को बचाने का एक शानदार तरीका हो सकता है। नासा ने अंतरिक्ष में कुछ प्रयोग भी किए और पाया कि एशियन बीन रोपाई वे शून्य गुरुत्वाकर्षण में मीर अंतरिक्ष स्टेशन पर एयरोपोनिक तकनीक का उपयोग करते हुए पृथ्वी पर समान पौधों से भी बेहतर हो गए।

7. वर्टिकल फार्मिंग

यह खड़ी खड़ी परतों में फसल उगाने का अभ्यास है। यह अक्सर नियंत्रित–पर्यावरणीय कृषि को शामिल करता है, जिसका उद्देश्य पौधें की वृद्धि और जलविहीन खेती की तकनीक जैसे हाइड्रोपोनिक्स, एक्वापोनिक्स और एरोपोनिक्स को अनुकूलित करना है। वर्टिकल फार्मिंग सिस्टम के लिए संरचनाओं के कुछ सामान्य विकल्पों में इमारतें, शिपिंग कंटेनर, सुरंगें और परित्यक्त खान शाफ्ट शामिल हैं। 2020 तक, दुनिया में लगभग 30 हेक्टेयर (74 एकड़) परिचालन ऊर्ध्वाधर खेत के बराबर है। ऊर्ध्वाधर खेती की आधुनिक अवधारणा 1999 में कोलंबिया विश्वविद्यालय में सार्वजनिक और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के प्रोफेसर डिक्सन डेस्पोमीयर द्वारा प्रस्तावित की गई थी। डेस्पोमीयर और उनके छात्र एक गगनचुंबी खेत के डिजाइन के साथ आए, जो 50,000 लोगों को खिला सकता

था। हालांकि डिजाइन अभी तक नहीं बनाया गया है, लेकिन इसने ऊर्ध्वाधर खेती के विचार को सफलतापूर्वक लोकप्रिय बनाया। वर्टिकल फार्मिंग के वर्तमान अनुप्रयोगों ने अन्य अत्याधुनिक तकनीकों, जैसे कि विशेष एलईडी लाइटों के साथ, पारंपरिक खेती के तरीकों के मुकाबले 10 गुना अधिक फसल उपज प्राप्त की है।

8. पौधों की बीमारी का पता लगाने के लिए सेंसर्स सिस्टम

डिजिटल छवि विश्लेषण कई वर्षों में विकसित हुआ है। यह पहली बार 2 डी छवि विश्लेषण के युग के साथ शुरू हुआ। दूसरे, एमआरआई और सीटी का उपयोग करके ज्ञान–आधारित दृष्टिकोण ने विकास प्रक्रियाओं को बदल दिया। अंत में, पूरी तरह से 3 डी छवियों का विश्लेषण प्रकाश में लाया गया था। डिजिटल मॉडल चालित दृष्टिकोण शुरुआत में और फिर 1999 के बाद आज तक उन्नत इमेजिंग और कंप्यूटिंग प्रौद्योगिकियों का उपयोग आवश्यकताओं के अनुसार बेहतर और अधिक यथार्थवादी दृश्य के लिए किया जाता है। मशीन लर्निंग के तरीके भी अंततः विकसित हुए हैं। विभिन्न पौधों की बीमारी की पहचान के लिए, इमेजिंग प्रणाली के लिए सेंसर अलग–अलग पहलू से पत्तियों के अध्ययन के लिए डेटा जमा करने के लिए तैनात किए जाते हैं। विभिन्न उपयोगी इमेजिंग तकनीकों में थर्मल इमेजिंग, मल्टीस्पेक्ट्रल इमेजिंग, प्रतिदीप्ति इमेजिंग, हाइपर वर्णक्रमीय इमेजिंग, दृश्यमान इमेजिंग, एमआरटी और 3 डी इमेजिंग विधियाँ पादप रोग का पता लगाने की महत्वपूर्ण तकनीकें शामिल हैं।

9. स्मार्ट कृषि सेंसर

स्मार्ट कृषि, जिसे सटीक कृषि के रूप में भी जाना जाता है, किसानों को पानी, उर्वरक और बीज जैसे न्यूनतम संसाधनों का उपयोग करके पैदावार को अधिकतम करने की अनुमति देता है। सेंसर और मैपिंग फील्ड तैनात करके, किसान अपनी फसलों को सूक्ष्म स्तर पर समझना शुरू कर सकते हैं, संसाधनों का संरक्षण कर सकते हैं और पर्यावरण पर प्रभाव को कम कर सकते हैं। सटीक कृषि में कई संवेदी प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया जाता है, डेटा प्रदान करना जो किसानों को फसलों की निगरानी और अनुकूलन में मदद करता है, साथ ही साथ बदलते पर्यावरणीय कारकों के लिए अनुकूल हैः

स्मार्ट कृषि में शामिल है

स्थान सेंसरः यह पैरों के भीतर अक्षांश, देशांतर और ऊंचाई निर्धारित करने के लिए जीपीएस उपग्रहों से संकेतों का उपयोग करते हैं। NJR NJG1157PCD-TE1 जैसे GPS इंटीग्रेटेड सर्किट लोकेशन सेंसर का एक अच्छा उदाहरण हैं।

ऑप्टिकल सेंसरः यह मिट्टी के गुणों को मापने के लिए प्रकाश का उपयोग करते हैं। सेंसर निकट–अवरक्त, मध्य–अवरक्त और ध्रुवीकृत प्रकाश स्पेक्ट्रोम्स में प्रकाश परावर्तन की विभिन्न आवृत्तियों को मापते हैं। मिट्टी, कार्बनिक पदार्थ और मिट्टी की नमी को निर्धारित करने के लिए ऑप्टिकल सेंसर विकसित किए गए हैं। उदाहरण के लिए, विहाय, ऑप्टिकल सेंसर के लिए एक बुनियादी बिल्डिंग ब्लॉक, सैकड़ों फोटोडेटेक्टर और फोटोडिएड्स प्रदान करता है।

ढांकता हुआ मिट्टी नमी सेंसरः यह मिट्टी में ढांकता हुआ स्थिरांक (एक विद्युत संपत्ति जो नमी की मात्रा के आधार पर बदलता है) को मापकर नमी के स्तर का आकलन करता है।

एयरफ्लो सेंसरः यह मिट्टी की वायु पारगम्यता को मापते हैं। विभिन्न प्रकार की मिट्टी के गुण, जिसमें संघनन, संरचना, मिट्टी का प्रकार, और नमी का स्तर शामिल हैं, अद्वितीय पहचान हस्ताक्षर का उत्पादन करते हैं।

कृषि मौसम स्टेशनः यह स्व–निहित इकाइयाँ हैं जिन्हें पूरे बढ़ते हुए क्षेत्रों में विभिन्न स्थानों पर रखा जाता है। इन स्टेशनों में स्थानीय फसलों और जलवायु के लिए उपयुक्त सेंसर का संयोजन है। वायु तापमान, विभिन्न तापमानों पर मिट्टी का तापमान, वर्षा, पत्ती गीलापन, क्लोरोफिल, हवा की गति, ओस बिंदु तापमान, हवा की दिशा, सापेक्ष आर्द्रता, सौर विकिरण और वायुमंडलीय दबाव जैसी सूचनाओं को पूर्व निर्धारित अंतराल पर मापा और रिकॉर्ड किया जाता है। यह डेटा संकलित किया गया है और वायरलेस रूप से प्रोग्राम किए गए अंतराल पर केंद्रीय डेटा लकड़हारे के पास भेजा जाता है। उनकी पोर्टेबिलिटी और घटती कीमतें मौसम स्टेशनों को सभी आकारों के खेतों के लिए आकर्षक बनाती हैं।

ग्रामीण महिलाओ को कृषि एवं औद्यानिकी उत्पादो के प्रसंस्करण पर प्रशिक्षण का आयोजन

भारत सरकार के 'बायोटेक किसान हब' परियोजना के अंतर्गत भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने कृषि विज्ञान केंद्र, मंडकोला (मेवात) के सहयोग से दिनांक 8 जनवरी, 2021 को 35 ग्रामीण महिलाओ को 'कृषि एवं औद्यानिकी उत्पादो के प्रसंस्करण' पर प्रशिक्षण का आयोजन किया। ग्रामीण महिलाओ की सुविधा के लिए यह प्रशिक्षण कार्यक्रम कृषि विज्ञान केंद्र, मंडकोला (मेवात) में आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में डॉ. एन.वी. कुंभारे, प्रधान वैज्ञानीक एवं प्रभारी, एटिक ने ग्रामीण महिलाओं को कृषि एवं औद्यानिकी उत्पादो के प्रसंस्करण एवं मूल्य वर्धन का महत्व समझाया और समूह में उद्यम सुरू करने के लिए उत्साहित किया। डॉ. शालिनी गौर, वरिष्ठ वैज्ञानिक, कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी और खाद्य विज्ञान विभाग, डॉ. कांता सबरवाल, विषय विशेषज्ञ (प्रसार) एवं जमीऔंग ल्हामों, शोध सहायक ने महिलाओं को कुकीज, नूडल्स और चुकंदर (बीटरूट) के लड्डू बनाकर दिखाया और मूल्यवर्धन के महत्व पर चर्चा की तथा प्रशिक्षण में सहभागी सभी महिलाओं को प्रेरित किया।

इस परियोजना के अंतर्गत भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा ग्राम बरोटा, जिला मेवात (हरियाणा) में दिनांक 20 फरवरी, 2021 को गाँव की कृषक महिलाओं को बाजरे के मूल्य वर्धन पर प्रशिक्षण आयोजित किया। डॉ. वी. संगीता, वरिष्ठ वैज्ञानिक (प्रसार) एवं डॉ. एन.वी. कुंभारे, प्रधान वैज्ञानीक (प्रसार) ने बाजरे के पौष्टिक गुण को जानते हुए कृषक महिलाओं को बाजरे के लड्डू बनाने का प्रशिक्षण दिया और गाव में स्व–सहायता समूह के माध्यम से उत्पाद को मार्केटिंग कर लाभ कमाने के लिय उत्साहित किया। प्रशिक्षण के बाद सभी सहभागी महिलाओं ने प्रशिक्षण पर प्रसन्नता व्यक्त की।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क ₹80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,